प्रकाशक—
सस्ता-साहित्य-मण्डल,
अजमेर ।

प्रथमवार
२०००

मूल्य
दस आना

मुद्रक,
जीतमल लूणिया,
सस्ता-साहित्य-प्रेस,
अजमेर ।

अपनी पूजनीया जननी की

पवित्र स्मृति में—

विषय-सूची

नक़्शे

दो शब्द

जब कि हम विदेशी के बहिष्कार और स्वदेशी के ग्रहण का निश्चय कर रहे हैं, हमको विदेशी वस्तुओं के मुक़ाबले के लिए भी तैयार होना पड़ेगा। विदेशी वस्तुओं में सबसे मुख्य प्रश्न है विदेशी वस्त्रों का। जबतक हम विदेशी वस्त्रों की सफल प्रतियोगिता न करने लगेंगे, आन्दोलन के फलस्वरूप स्वदेशी का सामयिक जोर भले ही हो जाय पर स्थायी-रूप से विदेशी के मुक़ाबले वह जम न सकेगा। अतएव कलकत्ते के भारतीय व्यापार-संघ के उत्साही मंत्री श्री मनमोहन पुरुषोत्तम गाँधी की अंग्रेजी पुस्तक (How to compete with foreign cloth) के इस हिन्दी-अनुवाद को बड़ी खुशी के साथ हम अपने पाठकों के हाथों में रख रहे हैं। श्री गाँधी विद्वान अर्थ-शास्त्री ही नहीं हैं, बल्कि व्यापार तथा उद्योग की बड़ी-बड़ी और प्रमुख संस्थाओं से निरन्तर सम्बन्धित रहने के कारण अपने विषय का उन्हें ख़ास अनुभव और व्यावहारिक ज्ञान भी है। आर्थिक विषयों पर कई सुन्दर और प्रामाणिक पुस्तकें भी वह इससे पहले लिख चुके हैं, जो अपने क्षेत्र में काफ़ी सुख्यात हैं और उनकी यह पुस्तक कितनी महत्वपूर्ण है, यह तो इसी बात से स्पष्ट है कि विज्ञानाचार्य प्रफुल्लचन्द्रराय ने इसकी भूमिका तथा विश्ववन्द्य महात्मा गाँधी ने इसकी प्रस्तावना लिखी

है। अंग्रेजी में इस पुस्तक का आदर भी खूब हुआ है; और हमें आशा है, हिन्दी-संसार भी इसकी उपयुक्त क़दर किये वग़ैर न रहेगा। श्री गाँधी ने जिस प्रसन्नता और उदारता के साथ इसके हिन्दी-अनुवाद की आज्ञा दी है, और साथ ही अनुवाद को स्वयं दोहराने का भी कष्ट उठाया है, उसके लिए निश्चय ही हम उनके कृतज्ञ हैं। अनुवाद को दोहराते समय जो आवश्यक सूचनायें उन्होंने दी हैं, और पुस्तक को अप-टू-टेड बनाने के लिए नई-नई सामग्री भी जो श्रम-पूर्वक उसमें जोड़ दी है, उसके लिए हम कृतज्ञता-पूर्वक उन्हें धन्यवाद देते हैं।

पुस्तक के जल्दी छपने में कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं, इसका हमें खेद है। कुछ का तो शुद्धि-पत्र भी दे दिया गया है, फिर भी जो भूलें रह गई हों उन्हें पाठक सुधार लेने की कृपा करेंगे।

प्रकाशक—

भूमिका

"हिन्दुस्थानी सूती वस्त्र-व्यवसाय—उसका भूत, वर्तमान और भविष्य" विषय पर मैंने एक पुस्तक लिखी थी, और जनता तथा समाचारपत्रों द्वारा, ग्रेट ब्रिटेन और अन्य देशों में, वह बड़ी पसन्द की गई। उसी प्रोत्साहन से प्रेरित होकर मैंने विदेशी कपड़े का मुकाबला कैसे किया जाय? नामक यह पुस्तक प्रकाशित करने का साहस किया है। जिस समय जनता इस समस्या को सुलझाने में बड़ी गंभीरता से लगी हुई है कि भारतवर्ष को कपड़े के मामले में स्वावलंबी कैसे बनाया जाय, उसी समय मैं इस पुस्तक को उसके सामने रख रहा हूँ। संसार के सर्वश्रेष्ठ जीवित व्यक्ति महात्मा गाँधी ने राष्ट्रीय काँग्रेस-द्वारा स्वराज्य-प्राप्ति के लिए जिस राजनैतिक आन्दोलन को उठाया है उसका एक मुख्य अंग स्वदेशी-आन्दोलन है।

मैं महात्मा गाँधी का बहुत ही कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने इस पुस्तक के प्रूफ देखे और कई बहुमूल्य बातें सुझाईं। उनकी बताई हुई बातों में से कई एक तो मैंने इस पुस्तक में समाविष्ट कर दी हैं। मैं इसलिए भी उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, कि उन्होंने, अपने अनेक आवश्यक कार्यों के बीच, मेरी पुस्तक के हिन्दी-गुजराती आदि संस्करणों के लिए प्रस्तावना लिख दी है।

इस पुस्तक का 'विदेशी कपड़े का मुकाबला कैसे किया जाय?' नाम महात्माजी का ही सुझाया हुआ है।

पुस्तक की प्रायः सारी सामग्री नये से नये आंकड़ों और सूचनाओं-सहित आजतक पूर्ण है। इसका आधार नवीनतम पुस्तकों, रिपोर्टों व अन्य साहित्य पर है, जो मुझे कलकत्ता के इंडियन चेम्बर ऑव कमर्स के सुपूर्ण और उत्तम पुस्तकालय से सरलता से मिल सका। बंबई मिल-मालिक संघ के मंत्री श्री टी० मैलोनी ने प्रत्येक समय मुझे इस विषय की बड़ी उपयोगी सूचनायें दी हैं, इसलिए मैं उनको भी धन्यवाद देता हूँ।

मैंने जनता से अपील की है कि वह स्वदेशी, विशेषतः हाथकते सूत के हाथ-बुने कपड़े अर्थात्, खद्दर को अपनावें। इसका उद्देश्य यही है कि बहुत से लोग जो साल में छः महीने मजबूरन् बेकार रहते हैं, उनके लिए कोई उचित सहायक धंधा मिल जाय, और वह धंधा कताई ही है। ऐसे उचित सहायक-धंधे के मिलजाने से जनता की खरीदने की शक्ति बढ़ेगी। और उसके जीवन-निर्वाह की कोटि अवश्य कुछ ऊंची उठेगी। जन-साधारण के जीवन-निर्वाह की कोटि को ऊँचा उठाना तो परोपकार-भावना के अतिरिक्त व्यापार से भी सम्बन्ध रखता है। इसके द्वारा न केवल इस देश के ही अनेक उद्योग-धंधे फले-फूलेंगे, वरन् सारे संसार के उद्योगों को भी लाभ होगा। यदि इस मौके पर छपने से यह पुस्तक इस अपील में सफल हो सके तो मैं समझूँगा कि अपने परिश्रम का मुझे यथोचित पुरस्कार मिल गया।

मुझे विश्वास है कि जो लोग दिल से चाहते हैं कि देश का कल्याण हो, वे अवश्य देश के अन्दर बने हुए कपड़े को अपनायेंगे, ताकि, विदेशी कपड़ा व सूत हट सके, और जो बहुत-सा रुपया आजकल भारतीयों का तन ढकने के लिए विदेश भेजा जाता है, वह देश में ही रह सके।

मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस पुस्तक में प्रकट किये हुए विचार मेरे व्यक्तिगत ही हैं, और उनका कोई आवश्यक सम्बन्ध उन संस्थाओं से नहीं है, जिनसे मैं सम्बन्धित हूँ।

१२५, कैनिंग स्ट्रीट,
कलकत्ता।

मनमोहन पुरुषोत्तम गाँधी

प्राक्कथन

भारत की वस्त्र-उत्पत्ति में हाथ-कताई,हाथ-बुनाई और मिलों का स्थान क्या है, इस विषय में यह छोटी-सी पुस्तक बड़े ही अच्छे मौके पर प्रकाशित हुई है। इसके लेखक का अनेक व्यापारिक संस्थाओं से गहरा सम्बन्ध है। उन्होंने बड़ी मेहनत से बड़े स्पष्ट और जँचनेवाले ढंग से यह बताया है कि हमको आन्तरिक साधनों से आवश्यक वस्त्र उत्पन्न करके किस प्रकार विदेशी वस्त्र की बुराई से युद्ध करना चाहिए, और उसके लिए मैं लेखक को बधाई देता हूँ। लेखक ने हाथ-बुनकरों से जबरदस्त अपील की है कि वे अब कपड़ा बनाने के लिए हाथकते सूत का ही अधिक-से-अधिक उपयोग करें। उसी प्रकार उन्होंने मिलों से भी ज़ोरदार अपील की है कि वे अब महीन कपड़ा बनाने में लग जायँ ताकि महीन विदेशी कपड़े की स्थान-पूर्ति होसके। उन्होंने जनता से भी अपील की है कि वह वस्त्र-सम्बंधी अपनी नख़रेबाज़ी को छोड़कर खद्दर अर्थात् हाथ-कते सूत के हाथ-बुने कपड़े को अपनावे। भले ही इसके लिए रुचि, सुविधा, और धन का कुछ त्याग भी करना पड़े, और यदि यह संभव न हो तो भारतीय मिलों के कपड़े का व्यवहार करे।

लेखक को यह भी दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि छपते समय इस पुस्तक को महात्मा गाँधी ने देखा है, और जनता को यह जानकर बड़ा सन्तोष होगा कि इस पुस्तक को महात्माजी ने साधारणतः पसन्द किया है। यह देखकर भी मुझे प्रसन्नता हुई है कि लेखक ने महात्माजी की सुझाई हुई कुछ बातों को इसमें समाविष्ट कर दिया है, और इस प्रकार पुस्तक को अधिक उपयोगी और प्रामाणिक बना दिया है।

लेखक ने जो हाथ-कताई और हाथ-बुनाई के महत्व पर बड़ा ज़ोर दिया है वह ठीक है। मैं उनकी इस सम्मति से पूर्णतः सहमत हूँ कि

हर घर में चर्खा और हर गांव में कुछ कर्घे, यही नीति भारत की भावी राष्ट्रीय सरकार की होनी चाहिए। उन्होंने बताया है कि विदेशों से आनेवाले कपड़े पर निवारक-कर लगाया जाय, और भारतीय मिलों को इस प्रकार के कपड़े बनाने से रोक दिया जाय जिसको हाथ-कर्घे ही विशेषरूप से बनाते हों और आवश्यकता हो तो इसके लिए क़ानून भी बना दिया जाया। देश की मुक्ति स्वदेशी से ही होगी, और मुझे पूर्ण आशा है कि मेरे देशवासी भविष्य में विदेशी कपड़ा बिलकुल व्यवहार में न लायँगे।

लेखक ने परिशिष्ट सं० १ में प्रति व्यक्ति वस्त्र पर होने वाले व्यय के बड़े उपयोगी आंकड़े संगृहीत किये हैं, और परिशिष्ट सं० २ में भारतीय वस्त्र-उद्योग सम्बन्धी ब्रिटिश सरकार की उस नीति का घटनाक्रम बड़े प्रभावशाली ढंग से दिया है जिससे इस उद्योग का ह्रास हुआ है। इन दोनों परिशिष्टों की ओर भी मैं पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

श्री एम० पी० गाँधी की यह पुस्तिका बड़ी उपयोगी है और बड़ी योग्यता से लिखी गई है। मैं बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक जनता से उसे पढ़ने की सिफ़ारिश करता हूँ। आशा है कि इस पुस्तिका का समुचित आदर होगा।

यूनीवर्सिटी कालेज आव् साइन्स
कलकत्ता

पी० सी० राय

प्रस्तावना

यह पुस्तक श्री एस० पी० गाँधी की "हाउटु कॅम्पीट विद् फॉरेन क्लाथ" नामक अंग्रेजी पुस्तक का हिंदी अनुवाद है। मैंने हिन्दी का अनुवाद नहीं पढ़ पाया है। मूल पुस्तक मैंने यरवदा मंदिर में पढ़ी थी। पुस्तक आधुनिक समय के उपयुक्त है। इसस यह सिद्ध किया जा सकता है कि चर्खे और खद्दर की सहायता के बिना विदेशी वस्त्र का बहिष्कार करना सम्भव नहीं है। लेखक ने यह बताने का अच्छा प्रयत्न किया है कि विदेशी वस्त्र का पूर्ण बहिष्कार करने के लिए क्या-क्या करना चाहिए।

इस पुस्तक में उपयोगी आंकड़े बहुत दिये हुए हैं। मेरा ख्याल है कि जो लोग बहिष्कार-धर्म को समझना चाहते हैं उन्हें इससे बड़ी सहायता मिलेगी।

मोहनदास क० गाँधी

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१	१७	मिल व्यवसाय	वस्त्र व्यवसाय
४	२२	"	"
१५	हेडिंग में	१९३०	१९३१
१७	"	१९३०	१९३१
१९	२१	मिल व्यवसाय	वस्त्र व्यवसाय
२५	१-२	(महीन कपड़े… …जा रहा है)	(जो महीन कपड़े बनाने के लिए काम में लाया जाता था। (
२५	१०	आर-डी-बेल की राय… …होंगे	आर-डी-बेल ने कहा है–
३०	१६ (मार्जिन के हेडिंग में)	हाथबुनकरों–	पहनने वालों
३०	२४	कपड़े	कलफ (Starch)
३२	४	यह	२०-यह
४८	२	यह	२७-यह
७८	१५	कतैयों	कृपिजीवियों

ध्यान दीजिए—

[नोट—किताब छपना शुरू होने के बाद, मुझे निम्नलिखित आंकड़े और प्राप्त हो गये हैं। इन आँकड़ों से पुस्तक अबतक बिलकुल पूर्ण हो जायगी, इसलिए मैं इन्हें यहां दे रहा हूँ। जिस नक़शे और पृष्ठ पर वृद्धि करनी है, उसकी संख्या हाशिये पर बताई गई है। लेखक]

नक़शा सं० १ व ८ में वृद्धि

यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि १९२९-३० में जहाँ विदेशी कपड़े की आयात में १९०० लाख गज की कमी हुई थी, वहाँ १९३०-३१ के ८७०० लाख गज़ की हुई है (देखिए नक़शा सं० १) इसका बड़ा कारण तो १९३० का ज़ोरदार बहिष्कार-आन्दोलन है, और अंशतः देश में फैली हुई आर्थिक मन्दी है। यह कमी परिमाण में वर्ष में ५४% पड़ती है। कितना अच्छा हो यदि इसी प्रगति से बाहर माल की आमद ही बन्द हो जाय। मूल्य में, आयात की यह कमी ११२९-३० में जहाँ ५० करोड़ रु० थी वहाँ १९३०-३१ में २० करोड़ रु० हुई। यह कमी ६०% है। यह बात भी बड़ी आशाजनक हुई है। मुझे आशा है कि

देश, स्वदेशी कपड़े को अपनाने और विदेशी कपड़े को निकाल देने के प्रयत्न को जारी रक्खेगा। भारतीय मिलों की उत्पत्ति १९३०-३१ में बढ़ कर २५०० लाख गज हो गई, यद्यपि आर्थिक अवस्था ख़राब रही और जनता की क्रय-शक्ति घट गई।

नक़शा सं० २ में वृद्धि

भारतीय मिलों में १९३०-३१ में सूत की उत्पत्ति (देखिए नक़शा सं० २ पृष्ठ २६) भी बढ़कर ८६७० लाख पाउण्ड हो गई, जब कि १९२९-३० में उत्पत्ति ८३३० लाख पाउण्ड ही हुई थी। और, विदेशी सूत के आयात में भी कमी हुई। १९२९-३० में तो ४३० लाख पाउण्ड विदेशी सूत आया था, परन्तु १९३०-३१ में केवल २९० लाख पाउण्ड आया। लगभग ३४% की कमी एक ही वर्ष में हुई।

नक़शा सं० ४ तथा ६ में वृद्धि

हिन्दुस्थान में जितना सूत आता है, उसमें संयुक्त-राज्य का प्रतिशत भाग १९३०-३१ में घट कर ३५ रह गया, जब कि १९२९-३० में यही ४६ था। जापान का भाग उतना ही रहा और चीन का भाग १९३०-३१ में बढ़ कर ४० हो गया (देखिए नक़शा सं० ४, पृष्ठ ४२)। १९३०-३१ में आने वाले सूत का मूल्य घटकर ३०० लाख

रुपया रह गया जब कि १९२९-३० में ५९० लाख रुपया था। यह एक वर्ष में लगभग ४९% की कमी हुई। (देखिए नक़शा सं० ९, पृष्ठ ७२)।

हिन्दुस्थान को विदेश से जितना कपड़ा आता है है उसमें संयुक्त-राज्य का भाग १९३०-३१ में घट कर ५८·% हो गया, जब कि १९२९-३० में वह भाग ६५·५% था) देखिए नक़शा सं० ७ पृष्ठ ६६)। और जापान का भाग २९·३% से बढ़ कर १९३०-३१ में ३६·१% हो गया। इससे प्रकट होता है कि ब्रिटिश माल के बहिष्कार को कुछ सफलता मिली। परिमाण में संयुक्त राज्य से १९२९-३० में १२४५० लाख गज़ कपड़ा आया किन्तु १९३०-३१ में घटकर केवल ५२३० लाख गज़ आया; और, जापान से ५६२० लाख गज़ से घटकर ३२१० लाख गज़ आया (देखिए नक़शा सं० ८, पृष्ठ ६८)।

नकशा सं० ७ व ८ में वृद्धि

१९२९-३० के लिए भारतीय रुई की फ़सल का अन्दाज़ ५२ लाख गाँठ का था, परन्तु १९३०-३१ की फ़सल का अन्दाज़ ४८ लाख गाँठ का हुआ। भारतीय मिलों में भारतीय कच्ची रुई की खपत १९२९-३० की २२·४८ लाख गाँठों से बढ़ कर १९३०-३१ में २२·६५

पैरा ३० (पृष्ठ ५३) में वृद्धि

लाख गाँठ हो गई। विदेशी कच्ची रुई के आयात में भी वृद्धि हुई। १९२९-३० में जहाँ २४२ लाख रु० की १२४००० गाँठें विदेशी रुई की आई, वहाँ १९३०-३१ में विदेशी रुई की ६३९ लाख रु० की ३२७४०० गाँठें आई। परिमाण में विदेशी कच्ची रुई लगभग दुगुनी आई। यह आयात मिश्र और संयुक्त-राष्ट्र (अमेरिका) से हुआ। भारत के रुई के निर्यात में भी कमी हुई। जहाँ १९२९-३० में ४० लाख गाँठें बाहर गई थीं, जिनका मूल्य ६४ करोड़ रुपया था, वहाँ १९३०-३१ में ३९ लाख गाँठें बाहर गई जिनका मूल्य ४६ करोड़ रुपया हुआ। मूल्य में तो बहुत ही कमी हुई, और इसका कारण भारतीय रुई के भाव का भयंकर रूप से गिर जाना था।

सितम्बर १९३१ में सरकार ने अपने पृथक बजट में कच्ची रुई पर)॥ आना प्रति पाउण्ड कर लगाने की तजवीज़ की है। इस कर से भारतीय मिलों को मैञ्चेस्टर के मुक़ाबले का बारीक कपड़ा तैयार करने में बाधा होगी। व्यवस्थापिका सभा इस बजट पर नवम्बर १९३१ में बहस करेगी।

(पृष्ठ ४५ पर पैरा २६ के पहले जोड़िए)

यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई है कि व्यवस्थापिका सभा में सितंबर

१९३१ में पेश किये हुए अपने पूरक बजट में सरकार ने यह तजवीज़ की है कि नक़ली रेशमी सूत पर आयात-कर १०% से बढ़ाकर १८¾% किया जाय, और नक़ली रेशम के वस्त्र पर २०% से बढ़ाकर ५०% कर दिया जाय।

मुझे विश्वास है कि सरकार के इस कार्य से सूती कपड़े पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ेगा। इससे नक़ली रेशम का सूत और कपड़ा जो अपनी अत्यधिक सस्ताई के कारण सूती वस्त्र के लिए एक ख़तरा बनता जा रहा था, अब आने से रुक जायगा।

(पृष्ठ ५५ पर अन्तिम पैरा शुरू होने के पहले जोड़िए)

यह जानकर मुझे दुःख हुआ है कि व्यवस्थापिका सभा में सितम्बर १९३१ में पेश किये हुए अपने पूरक बजट में सरकार ने यह तजवीज़ की है कि कच्ची रुई के आयात पर ½ आना प्रति पाउण्ड कर लगाया जाय। इससे मिलों को मैंचेस्टर के मुक़ाबले का बारीक कपड़ा बनाने में बाधा पड़ेगी। मुझे आशा है कि व्यवस्थापिका सभा इस तजवीज़ को अस्वीकृत कर देगी, अन्यथा इससे देश को बड़ा धक्का लगेगा। जबतक कि कर लगाने के कोई बहुत ही ज़बरदस्त कारण न हों तबतक कच्चा माल तो सब प्रकार के कर से मुक्त होना चाहिए।

(पृष्ठ १०६ प्रथम पंक्ति में 'यह सारी' के पहले जोड़िए)

सन् १९३१ में सरकार ने सूती कपड़ों पर और सूत पर बजट की

पूर्ति तथा आमदनी बढ़ाने के लिए आयात-कर लगा दिया है। इसके विस्तृत विवरण के लिए देखिए परिशिष्ट संख्या २ पृष्ठ १२३–२४।

(पृष्ठ १२ के नोट के नीचे जोड़िए)

१ जनवरी से ३१ मार्च १९३१ तक तीन महीनों में १६०० लाख गज़ विदेशी थान-बंद कपड़ा और आया। १९३० के इन्हीं तीन महीनों में ५१८० लाख गज विदेशी थान बंद कपड़ा आया था। मतलब यह कि जहाँ १९२९–३० (अप्रैल से मार्च तक) में १८९७० लाख गज विदेशी थान-बंद कपड़ा आया था वहाँ १९३०–३१ (अप्रैल से मार्च तक) में सिर्फ़ ८७३० लाख गज कपड़ा आया।

(पृष्ठ १६–१७ के नक़्शा सं० १ के अन्त में १९३०–३१ के आंकड़ों में निम्न-लिखित परिवर्तन कीजिए)।

अप्रैल-सितम्बर की जगह अप्रैल-मार्च (१९३०-३१ पूरा वर्ष)।	५७९० की जगह ८७३०	१२३२० की जगह २५६१०	४९० की जगह ९७०	(जनसंख्या के खाने में) .... की जगह ३५०० (लाख)।

विदेशी कपड़े का मुक़ाबला कैसे किया जाय ?



भारतवर्ष संसार के रुई के वस्त्र-व्यवसाय का जन्म-स्थान है।

१. सब इतिहासज्ञ इस बात को मानते हैं कि संसार के रुई से कपड़ा बनाने के व्यवसाय का जन्मस्थान भारतवर्ष ही है।* भारतवर्ष में यह उद्योग कम-से-कम ३००० वर्ष से भी अधिक पुराना है। ऋग्वेद और प्राचीन-काल के अन्य ग्रन्थों में इसका जिक्र है।†

---

* श्री जे० ए० मैन ने जर्नल आव दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी, जिल्द, १२, १८६०, पृष्ठ २४७, में लिखा है–"जहां तक हमें ज्ञान है, रुई से कपड़ा बनाने की कला का जन्मस्थान भारतवर्ष है, और यह सर्व-स्वीकृत है।"

"रुई की खेती करने और उससे कपड़ा बनाने का काम सब से पहले भारतवर्ष ने किया, इसके लिए संसार को निःसन्देह भारत का कृतज्ञ और ऋणी होना चाहिए। जहां तक हम पता लगा सकते हैं भारतवर्ष ही उस महान उद्योग का जन्मस्थान है जो आज प्रत्येक सभ्य राष्ट्र में फैला हुआ है"—पृष्ठ १७, श्री आर्नो एस० पियर्स लिखित 'भारत का रुई का व्यवसाय।'

† भारत के सूती मिल-व्यवसाय के प्रारम्भिक इतिहास का विस्तृत हाल जानने के लिए, लेखक की पुस्तक–"हिन्दुस्थानी सूती मिल–व्यवसाय, उसका भूत वर्तमान और भविष्य" का पहला परिच्छेद देखिए।

२. सिर्फ २०० वर्ष पहले तक भारत रुई और रुई का बना कपड़ा यहाँ के निवासियों को और विदेशों के भी अपने बहुसंख्यक खरीदारों को दिया करता था। इस प्रकार, हजारों वर्ष तक भारत ने अपने प्रसिद्ध सूती कपड़े से अपना तन ढका, और अपना बचा हुआ माल उस समय के यूरोपीय राष्ट्रों को भी भेजा। अठारहवीं शताब्दि तक तो यूरोप में सूती कपड़ा बनाने की तरफ ध्यान ही नहीं दिया गया, और पिछली सदी के आरम्भ तक विदेशों को जितने कपड़े की जरूरत हुआ करती थी उसका अधिकांश भाग हिन्दुस्थान ही देता था।

भारत अठारहवीं शताब्दि तक यूरोप को कपड़ा देता था।

३. उन्नीसवीं सदी के प्रथमार्द्ध के पहले भारतवर्ष में कताई और बुनाई केवल हाथ से ही होती थी, मशीन से नहीं। ऐसी दशा में भी भारतीय कतैये और बुनैये बहुत ही ऊँचे दर्जे का नफीस और महीन कपड़ा तैयार करते थे। आज-कल तो बड़े-बड़े पेचीदा यन्त्र निकल आये हैं, परन्तु भारतीय कतैयों और बुनैयों के कताई और बुनाई के तरीके इनके मुकाबले बहुत ही सीधे-सादे थे। फिर भी 'सूती वस्त्र के उद्योग-धन्धों के इतिहास' नामक अपनी पुस्तक में सन् १८३५ में श्री बेन्स लिखते हैं कि, "सूती कपड़ा तो हिन्दुस्थानी लोग सदा से इतनी निपुणता से बनाते रहे हैं कि उसका विश्वास करना कठिन है। उस निपुणता को कोई भी नहीं पा सका। उनकी बनाई हुई मलमलें तो अप्सराओं या कृमियों-द्वारा ब[illegible]ी हुई समझी जा सकती हैं, मनुष्यों-द्वारा नहीं।" जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि हमारे

भारतवर्ष के हाथ-कते हाथ-बुने कपड़े की उत्तमत्ता

सीधे-सादे अपठित पूर्वजों का कपड़ा बनाने का तरीक़ा बिलकुल ही प्रारम्भिक अवस्था का था, और वे अपनी छोटी-छोटी झोंपड़ियों में अपूर्ण औज़ारों की सहायता से वस्त्र बनाते थे, तब तो हमें बड़े आश्चर्य और प्रशंसा से मानना ही पड़ता है कि वे महीन और नफ़ीस कपड़ा बनाने की कारीगरी में बहुत ही बढ़े-चढ़े थे। अत्यन्त प्राचीन समय से जो वस्तुएँ भारतवर्ष से बाहर जाती थीं, उनमें मलमल भी थी। ढाका के कारीगरों की बुनी हुई मलमल 'आबेरवां', 'शबनम' और 'बरू-समीरण' आदि नाम से प्रसिद्ध थी। भले ही अब कपड़े के उद्योग में मशीनों ने बड़ी उन्नति करली है, फिर भी वह मलमल अपने महीन-पन में सर्वश्रेष्ठ है।

पिछली शताब्दि के प्रारम्भ तक दुनिया-भर के वस्त्र-उद्योग में हाथ-कर्घे का महत्वपूर्ण स्थान

४. ऊपर के लेख से स्पष्ट है कि पिछली शताब्दि के प्रारंभ तक भी दुनिया के सूती वस्त्र के उद्योग में भारतीय हाथ-कर्घे के व्यवसाय का एक महत्वपूर्ण स्थान था। यह बात भी सब लोग जानते हैं कि इस देश में हाथ-कर्घे का व्यवसाय मशीन-कर्घों के व्यवसाय की बहुत बढ़ती होने पर भी नष्ट नहीं हुआ, बल्कि उसने अपनी स्थिति कायम रक्खी। अपने दीर्घकालीन इतिहास में और विशेषतः पिछले वर्षों में इसके क्रमशः कैसे-कैसे उत्थान-पतन हुए और आजकल भारतवर्ष की वस्त्र-उत्पत्ति में इसका क्या स्थान है, इस पर संक्षेप में विचार करना बड़ा उपयोगी होगा।

५. भारतवर्ष में अठारहवीं और उन्नीसवीं सदियों में जब

मशीन का बना माल आने लगा तब किसी हद तक हाथ-कर्घे की बुनाई का उद्योग घट गया। और, जब ब्रिटिश सरकार ने हर तरह भारतवर्ष में ब्रिटिश माल की बिक्री और खपत बढ़ाने का प्रयत्न किया, आयात-कर घटा या हटा दिये, हिन्दुस्तान में ही बननेवाले हिन्दुस्तानी माल पर आन्तरिक कर लगा दिये, और इंग्लैण्ड में उस पर निवारक-कर लगाये, तो इस निरन्तर-नीति की बाधा से हाथ-बुनाई के व्यवसाय का और भी अधिक ह्रास हुआ।‡ इस सम्बन्ध में यह कहना पड़ेगा कि इस देश की विदेशी सरकार ने जिन उपायों से भारतवर्ष की हाथ-बुनाई को नष्ट किया है, उनमें से कुछ तो उनको सम्मान देने योग्य नहीं है। कुछ तो वास्तव में बड़े ही अत्याचारपूर्ण थे। उदाहरणतः, स्वर्गीय श्री आर० सी० दत्त ने अपने 'ब्रिटिश भारत के आर्थिक इतिहास' में जुलाहों के अंगूठे काटने का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं—

हाथ-बुनाई के व्यवसाय का ह्रास और उसके कारण (परिशिष्ठ सं. २ भी देखिए)

> "इस प्रकार कंपनी के नौकरों और उनके एजेण्टों ने सब मुख्य-मुख्य ज़िलों में बंगाल के आन्तरिक व्यापार को बिगाड़ दिया। पर, जिन उपायों से वे यहाँ का तैयार माल प्राप्त करते थे, वे भी उतने ही अत्याचार-पूर्ण थे। इनका पूरा-पूरा वर्णन एक अंग्रेज़ व्यापारी विलियम बोल्ट्स ने किया है, जिसने सब हाल अपनी आँखों से देखा था।"

---

‡ जिस संगठित ढंग से भारतीय वस्त्र-व्यवसाय का ह्रास किया गया, उसके विस्तृत विवरण के लिए देखिए लेखक की (पुस्तक "हिन्दुस्तानी सूती मिल-व्यवसाय—उसका भूत, वर्तमान, और भविष्य" पृष्ठ ४५–५१,(परिशिष्ठ सं० २ भी देखिए।)

इसके बाद विलियम बोल्ट्स का बयान दिया गया है जिसमें बताया है कि जुलाहों से कम्पनी के नौकरों और एजेण्टों के लिए जबरदस्ती बहुत ही कम दाम पर कपड़ा बुनवाया जाता था। बयान के अन्त में लिखा है—

"और कच्चे रेशम में बल देने वाले नागोदा नामक लोगों के साथ तो इतना अन्यायपूर्ण व्यवहार किया गया कि कई लोगों ने रेशम में बल देने (बटने या मांजने) की मजबूरी से बचने के लिए अपने अंगूठे ही काट लिये।" (इटैलिक टाइप लेखक की ओर से लगाया गया है।) *

संक्षेप के लिए, महान् इतिहासज्ञ विलसन के शब्दों को उद्धृत कर देते हैं—

"जिस देश के अधीन हिन्दुस्तान हो गया, उसने इस पर कितना अन्याय किया, इस बात का एक शोकपूर्ण उदाहरण है। १८०८-१८१२ की पार्लमेण्टरी कमेटी के सामने एक गवाही में कहा गया था कि उस समय तक भारत का सूती और रेशमी माल मुनाफ़ा उठाकर भी इंग्लैण्ड के माल से ५० से ६० प्रतिशत तक सस्ता बेचा जा सकता है। इस कारण इंग्लैण्ड के माल की रक्षा के लिए हिन्दुस्तानी माल पर ७० और ८० प्रतिशत तक कर लगाना या उसका बिल्कुल निषेध कर देना आवश्यक हुआ। यदि ऐसा न हुआ होता और यदि ऐसे निवारक कर और आज्ञाएं मौजूद न होतीं, तो पेज़ली और मानचेस्टर की मिलें आरंभ में ही बन्द हो जातीं, और भाप की ताक़त से भी उनका चलाया जाना कठिन था।

---

* यूरोपियन पार्टी के नेता सर डार्सी लिण्डसे ने ३१ मार्च १९३० को व्यवस्थापिका सभा में सूती वस्त्र-व्यवसाय (संरक्षण) बिल, सन् १९३०, पर एक भाषण दिया था। उस भाषण में उन्होंने यह उद्धरण दिया था।

वे मिलें हिन्दुस्तानी उद्योग का बलिदान करके बनाई गईं। यदि भारत-वर्ष स्वतन्त्र होता, तो वह भी बदला लेता, और इस प्रकार अपने उत्पादक धंधे को नाश से बचा लेता। आत्म-रक्षा का यह कार्य करने की उसे इजाजत नहीं थी, वह विदेशियों के वश था। करमुक्त ब्रिटिश माल लेने को वह मजबूर किया गया और विदेशी कारखानेदारों ने राजनैतिक अन्याय के हथियार से एक ऐसे प्रतियोगी को दबाये रखा और अन्त में गला घोंट दिया कि जिसके समान सुविधाओं के होते हुए वे टिक नहीं सकते थे।" (इटैलिक टाइप हमारी ओर से लगाया गया है।)

सन् १९०९ तक हाथ-बुनाई का महत्व

६. पिछले इतिहास का तो हमने केवल संक्षिप्त निर्देश कर दिया है। अब हमें उन्नीसवीं शताब्दि के पिछले वर्षों की ओर ध्यान देना चाहिए और देखना चाहिए कि तब से सन् १९०९ तक हिन्दुस्थान के हाथ-बुनाई के व्यवसाय की क्या स्थिति रही, क्योंकि कहा जाता है कि सन् १९०९ तक तो हाथ-कर्घों ने मिलों की अपेक्षा अधिक कपड़ा तैयार किया था। उन्नीसवीं शताब्दि के अन्तिम चरण से एक ग़लत ख्याल लोगों के दिमाग़ में यह दिखाई देता है कि इस उद्योग का भूतकाल तो बड़ा गौरवपूर्ण था पर अब इसका कोई महत्व नहीं है, यह नष्ट होने वाला है और इसका नाश कब होगा; यह केवल थोड़े दिनों का प्रश्न है। प्रो० सी० एन० वकील ने परिश्रम से संकलित किये अपने "हमारी आर्थिक नीति" के इतिहास में लगभग ऐसी ही एक भयंकर ग़लती की है। वे लिखते हैं—"यह अच्छी तरह मालूम है कि अब (१८८२) तक यह (हाथ-कर्घे का) उद्योग बिल्कुल महत्वपूर्ण न रहा था।" सन् १८८२ में हाथ-कर्घों

के उद्योग से कितनी उत्पत्ति हुई, यह बताने के लिए आंकड़े तो प्राप्त नहीं हैं, परन्तु सन् १८९६ के बाद के वर्षों की काफ़ी सूचनायें प्राप्त हैं। सन् १८९६-९७ से लेकर १९००-०१ तक हाथ के कर्घों में हर साल लगभग २२०० लाख पाउण्ड सूत खप जाता था, पर मिलों में सिर्फ ९०० लाख पाउण्ड ही खपता था। इस प्रकार, कपड़ा बनाने के लिए मिलें जितना सूत खपाती थीं, हाथ-कर्घे उससे लगभग २½ गुना सूत खपाते थे। सन् १९०१ और १९०५ के बीच हाथ-कर्घे मिलों की अपेक्षा लगभग दुगना खपाते थे। इस बयान से उन लोगों की आँखें खुल जानी चाहिएँ जो या तो कहीं से सुन-सुनाकर या अपने मन के दुराग्रह के कारण हाथ-कर्घे के धंधे को महत्व-शून्य कहते हैं।

सन् १९०९ के बाद हाथ-बुने कपड़े की उत्पत्ति में कमी।

७. सन् १९०९ में हाथ-कर्घों ने ११११० लाख गज़ कपड़ा तैयार किया, और इसके मुकाबले भारतीय सूती मिलों ने ८२४० लाख गज ही तैयार किया। उसके बाद से हाथ-कर्घों का तैयार किया हुआ कपड़ा मिलों से कभी कुछ, कभी कुछ कम ही रहा है। सन् १९०९ के बाद ही मिलों में खपने वाले सूत का परिमाण हाथ-कर्घों में खपने वाले सूत के परिमाण से अधिक हुआ। सन् १९१५-१६ के बाद हाथ-कर्घों में वास्तव में कम सूत खपा। १९१६-१७ और १९२०-२१ के बीच की औसत वार्षिक खपत लगभग २००० लाख पाउण्ड हुई, पर मिलों की औसत वार्षिक खपत ३३०० लाख पाउण्ड तक पहुँच गई। परन्तु महायुद्ध के बाद के समय में हाथ-कर्घों के व्यवसाय ने फिर अपनी पूर्व स्थिति प्राप्त कर ली। १९२०-२१

से १९२४-२५ के वीच हाथ-कर्घों में औसत लगभग ३००० लाख पाउण्ड सूत खपा, पर इसके मुक़ावले १९११-१२ से १९१५-१६ तक का औसत २७०० लाख पाउण्ड और १९१६-१७ से १९२०-२१ तक औसत २२०० लाख पाउण्ड ही था।

८. आंकड़ों से मालूम होता है कि १९२४-२५ और १९२९-३० के वर्षों के वीच हाथ-कर्घे के उद्योग ने और भी प्रगति की है, और हाथ-कर्घों से वुने जाने वाले कपड़े का परिमाण वढ़ता रहा। सन् १९२९-३० में हाथ-कर्घों में ३५१० लाख पाउण्ड मिल का सूत खपा और १४०४० लाख गज कपड़ा वना, और इसके मुकावले मिलों में २४१८० लाख गज कपड़ा वना। भले ही हाथ-कर्घों की उत्पत्ति मिलों से कम है, पर यह मानना पड़ेगा कि खेती के वाद हाथ-वुनाई का धन्धा अव भी सव से वड़ा और सारे भारतवर्ष में फैला हुआ धन्धा है। जो लोग प्रधानतः किसान हैं, उनके लिए जव खेती का काम नहीं रहता* तव साल में वे कभी-कभी वुनाई भी कर लेते हैं। उनके अलावा भी भारतवर्ष में कम-से-कम २० लाख आदमी ऐसे हैं जो अपने हाथ-कर्घों पर कपड़ा वुनने का ही धन्धा करते हैं। † (नकशा सं० ६ में कर्घों की संख्या देखिए।)

हाथ-वुनाई का उद्योग भारतवर्ष का सव से वड़ा और विस्तृत उद्योग है

---

* कृषकों के लिए वर्ष में से लगभग आधा समय ऐसा होता है, जब उनके घर के सब आदमी बेकार रहते हैं। और किसी न किसी सहायक धन्धे की बड़ी गुंजायश होती है। इसके अतिरिक्त हाथ-कर्घे पर पूंजी भी

९. यहाँ इस बात पर भी ग़ौर कर लेना चाहिए कि सन् १९१९ से हाथ के कते हुए सूत का परिमाण ज़रूर ही बहुत बढ़ा होगा, क्योंकि तब से महात्मा गाँधी ने कपड़े के लिए विदेशों से स्वतन्त्र होने के उद्देश्य से लोगों को स्वयं ही कातने और बुनने को प्रोत्साहित किया। सन् १९१९ से स्वदेशी-प्रोत्साहन का आन्दोलन धीरे-धीरे व्यापक हो रहा है, और लोग हाथ-बुने कपड़े को अपना रहे हैं। वास्तव में आज-कल हरएक देशभक्त हिन्दुस्तानी का यह कर्तव्य माना जाने लगा है कि वह रोज़ आध घंटे चर्खा या तकली पर सूत काते। हाँ, कुछ लोग तो और भी अधिक आकर्षित हुए हैं और वे इस से भी अधिक समय तक नियम से कताई करते हैं। इस बात का अनुमान लगाना तो कठिन है कि हाल के वर्षों में कितने आदमी नियम से खुद कातने लगे हैं, पर इसमें शक नहीं कि खास कर मार्च १९३० से, जब कि महात्मा गाँधी ने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सविनय आज्ञा-भंग का आन्दोलन उठाया, लाखों ने कातना शुरू कर दिया है, स्वदेशी की प्रवृत्ति के कारण बेकार पड़े हुए कई पुराने हाथ-कर्घे फिर चल पड़े हैं, और ज़ोरों से काम करने लगे हैं। और, नये हाथ-कर्घे भी क़ायम हुए हैं।

१९१९ में हाथ-बुनाई और हाथ-कताई को प्रोत्साहन

ओढ़ीलगती ६ (लगभग २० रुपया)। मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट, ज़िल्द १, १९२१ पृष्ठ २७०-२७२, श्री टेलेण्ट्स और एडी का बयान भी देखिए।

† १९२० में भारत में सूती मिलें ३४८ थीं। उनमें ८८ लाख तकुए, १ लाख ७४ हज़ार कर्घे थे। इन मिलों से सिर्फ़ ३½ लाख मज़दूरों को रोज़गार मिलता था। १९२९-३० में इन मिलों में २३ लाख गांठ (प्रत्येक ४०० पाउण्ड) रुई खपी।

१०. यह खेद की बात है कि देश में कितना सूत हाथ से कतता है, इसके आंकड़े नहीं मिलते। इसलिए कताई के घरेलू व्यवसाय का महत्व ठीक-ठीक आंकना मुश्किल है। पर इसमें तो सन्देह नहीं है कि यह व्यवसाय बड़ा महत्वपूर्ण है। हाथ-कता सूत कितना तैयार होता है इसका एक मोटा-सा अनुमान शायद हम इस प्रकार लगा सकते हैं। हम देखें कि हिन्दुस्तान में कुल रुई कितनी होती है और उसमें से निर्यात और मिल की खपत को निकाल कर देश में कितनी रहती है। परन्तु कठनाई यह है कि गद्दे, तकिये, रजाइयाँ, और रुई के भरे हुए कपड़ों आदि में कितनी रुई लग जाती है, इस विषय में एक ही मत नहीं है। कुछ लोगों का अनुमान है कि २० प्रतिशत लग जाती है, कुछ कहते हैं कि ५० प्रतिशत लग जाती है। इसलिए यह तो केवल अव्यावहारिक है—कल्पना-कार्य है; और इसलिए मैंने यह उचित नहीं समझा कि मैं इसको इस वैज्ञानिक ढंग की पुस्तक में स्थान दूँ। इंडियन सेन्ट्रल कॉटन कमेटी का अनुमान है कि अतिरिक्त-कारखानों का खर्च और स्थानीय खर्च ७॥ लाख गांठों का है। पर वह विश्वास-योग्य नहीं है, और मैं उसे यहाँ नहीं ले सकता। इसमें तो सन्देह है ही नहीं कि हाथ-कते सूत का हाथ-बुना कपड़ा परिमाण में जरूर बढ़ रहा होगा। नकशा सं० १ में हमने यह माना है कि १८९६-९७ से १९२९-३० तक के वर्षों में जितना सूत मिलों ने काता, और

हाथ-करघों में काम आने-वाले हाथ-कते सूत के आंकड़े प्राप्त नहीं हुए

वैज्ञानिक ढंग की पुस्तक में बहुत भेद रखने वाले अनुमान नहीं लिए जा सकते

जितना बाहर से आया; चर्खों को हाथ का कता सूत उसका १० फी सदी तो जरूर मिला होगा। परन्तु यह मानना भी सही नहीं है। १९२०-२१ के बाद के वर्षों के लिए तो हमें प्रतिशत संख्या इससे अधिक माननी पड़ेगी। फिर भी मैंने नहीं मानी है। अन्यथा लोग इसे भी कल्पना-कार्य समझ लेंगे और इसका मूल्य घटा देंगे। कुछ लोगों ने अनुमान किया है कि हिन्दुस्तान में लगभग ५० लाख चरखे हैं जो कभी चलते और कभी बन्द रहते हैं, और इनसे हर साल प्रति चर्खा ४८ पौण्ड सूत निकलता है।* ४८ पाउण्ड सूत का अनुमान तो बहुत ही बढ़ा हुआ मालूम होता है। यदि अगली मर्दुमशुमारी में इसके गणनांक भी संग्रह किये जायँ कि लोगों के सहायक-धंधे की भाँति देश में चर्खा कितना फैला हुआ है, तो बड़ी अच्छी बात हो। सरकार को यह भी कोशिश करनी चाहिए कि हाथ के सूत से हाथ-कर्घों पर जो कपड़ा तैयार होता है उसका परिमाण जानने के लिए हाथ-कता सूत कितना तैयार है इसके अङ्क प्राप्त करे। इनके

---

* श्री आर्नो एस० पियर्स, जेनेरल सेक्रेटरी, इन्टरनेशनल फेडरेशन ऑन् मास्टर कॉटन स्पिनर्स एण्ड मेनुफैक्चरर्स-एसोसियेशन, लन्दन, की लिखी हुई पुस्तक "भारत का रुई का व्यवसाय" (पृष्ठ २५) देखिए। इस पुस्तक में ५ करोड़ संख्या बताई गई है। वह गलत है। संख्या ५० लाख होनी चाहिए। यह अनुमान १९२५-२६ में लगाया गया था। तब से न केवल ग्रामों में किन्तु नगरों में भी चर्खों की संख्या बहुत बढ़ गई है। महात्मा गाँधी ने आवाज उठाई है कि कम से कम आध घण्टा रोज जरूर कातना चाहिए, और उसी के अनुसार शहर के लोग भी चर्खा चला रहे हैं।

बिना, किसी हद तक यह ठीक-ठीक जानना बड़ा मुश्किल है कि हिन्दुस्तान में कितना कपड़ा बनता और कितना खपता है।

११. हिन्दुस्तान में कुल कपड़ा मोटे अनुमान (सन् १९२४–२५ से १९२९–३० के पाँच वर्षों की औसत) से ५०००० लाख गज खपता है। इसमें से अब भी २५ प्रतिशत हाथ-कर्घे देते हैं, ४० प्रतिशत मिलें देती हैं, और ३५ प्रतिशत विदेशों से आता है। आगे के नकशों से मालूम होगा कि भारत में १८९६–९७ से १९२९–३० तक ३४ वर्षों में विदेशी कपड़ा ठीक-ठीक कितना आया है, मिलों ने कितना तैयार किया, हाथ-कर्घों में कितना बना, और भारतीय मिल और हाथ का कपड़ा भारत में कितना खपा।* इस नकशे से यह भी मालूम होगा कि मिलों में कितना सूत खपा, हाथ-कर्घों में मिल का और विदेशी सूत कितना खपा। और इन्हीं वर्षों में देश में प्रति व्यक्ति कपड़े की खपत कितनी रही। पिछले साल का कपड़ा जो आगे साल के लिए शेष बचा उसके आंकड़ों का ध्यान इसमें नहीं रक्खा गया है। परन्तु लगातार कई वर्षों का साधारण निष्कर्ष निकालने में इन आंकड़ों का कोई अधिक प्रभाव न पड़ेगा।

विदेश से आने वाले, मिलों में बनने वाले, और हाथ-कर्घों से बुने जाने वाले तथा प्रतिव्यक्ति खर्च होने वाले कपड़े के आंकड़े

प्रति व्यक्ति वस्त्र-व्यय का अनुमान परिशिष्ट सं० १ में

* विदेशी थान-बन्द कपड़ा ३१ दिसम्बर १९३० को समाप्त होने वाले नौ महीनों में, ७१३० लाख गज आया। इसी की तुलना में दिसम्बर १९२९ को समाप्त होने वाले नौ महीनों में यही १३७९० लाख गज आया था। इन आंकड़ों से बहिष्कार-आन्दोलन की सफलता प्रकट होती है।

नक़शा सं० १

भारतवर्ष में कपड़े और सूत की खपत

१८९६-९७ से १९३० तक

विदेशों से कितना कपड़ा आया है, भारतीय सूती मिलों और हाथ-कर्घों द्वारा कितना कपड़ा उत्पन्न हुआ, भारतीय कपड़ा वर्ष में निश्चित कितना खपा, प्रति व्यक्ति कपड़ा कितना खपा, आदि विषयक आँकड़े

नकशा

भारत में कपड़े और सूत

सन्	भारत में विदेशी कपड़े की नक्की खपत (कुल आयात में से वापिस निर्यात घटाकर) लाख गज़ में	भारत में तैयार हुए कपड़े का परिमाण (लाख गज़)		भारत में बने हुए कुल कपड़े का परिमाण खाना नं० ३ व ४ का योग (लाख गज)	भारतीय कपड़ा जो विदेश भेजा गया (लाख गज)	भारतीय कपड़े का परिमाण जो हिन्दुस्तान के लिए शेष रहा खाना ५—६ (लाख गज)
		मिलों में तैयार हुआ	हाथ करघों से बुना गया [1]			
१८९६—९७	१९३२०	३५४०	७८४०	११३८०	१०७	१ ३१०
१८९७—९८	१८०००	३८९०	९२४०	१३१३०	९७०	१२१६०
१८९८—९९	२०० ०	४२६०	९४८०	१३८४०	९००	१२९४०
९९—१९००	२०५३०	४१९	८८४०	१३०३०	११२०	११९१०
१९००—०१	१८७५०	४२२०	६९२०	१११४०	१११०	१००३०
१९०१—०२	२०४२०	५११०	८८००	१३९१०	१२ ०	१२७१०
१९०२—०३	१९८६०	५२४०	९६००	१४८४०	१०९०	१३७५०
१९०३—०४	१९०३०	५८९०	८७२०	१४६१०	१२५०	१३३६०
१९०४—०५	२१५२०	६७८०	८२८०	१५०६०	१३५०	१३७१०
१९०५—०६	२३३५०	७०००	१०८४०	१७८४०	१२९०	१६५५०
१९०६—०७	२१९३०	७०८०	११४८०	१८५६०	११५०	१७४१०
१९०७—०८	२४०१०	८०८०	११०८०	१९१६०	११२	१८०४०
१९०८—०९	१८७००	८२४०	१११६०	१९४००	११३०	१८२७०
१९०९—१०	२०७००	९६४०	८९६०	१८६००	१२६०	१७३४०
१९१०—११	२१६२०	१०४३०	९०८०	१९५१०	१३४०	१८१७०
१९११—१२	२२६२०	११३६०	१०४४०	२१८००	११८०	२०६२०
१९१२—१३	२८४७०	१२२०	१०४००	२२६००	१२५०	२१३५०
१९१३—१४	३०४२०	११६४०	१०६८०	२२३२०	१३००	२१०२०
१९१४—१५	२३२७०	११३६०	११८४०	२३२००	११००	२२१००
१९१५—१६	२०१९०	१४४२०	१०४८०	२४९००	१६१०	२३२९०
१९१६—१७	१७७१०	१५७८०	८१६०	२३९४०	३०९०	२०८५०
१९१७—१८	१४०५०	१६१४०	८१२०	२४२६०	२३४०	२१९२०

(१) १९०६ ०७ से पहले के रंगीन कपड़ों के आंकड़े नहीं मिलते।
(२) प्रति व्यक्ति कपड़े पर खर्चा कितना होता है, इसको जानने

की खपत सन् १८९६-९७ से १९३० तक

विदेशी और भारतीय कपड़े की कुल खपत खाना २ व ७ का योग (लाख गज)	मिलों में कितना सूत खपा (यह मानकर कि १०० पौंड सूत ११२ पौंड कपड़े के बराबर होता है।) (लाख पाउण्ड)	हाथ-करघों के लिए कितना सूत शेष रहा (मिलका कता और विदेश का आया हुआ) (लाख पाउण्ड)	जन-संख्या (लाख)	कपड़े की खपत प्रति व्यक्ति (गज)
२९६३०	७४०	१९६०	२९२०	१०·१४
३०१६०	८१०	२२१०	२९२०	१०·३२
३२९४०	९१०	२३७०	२९२०	११·२८
३२४४०	८७०	२२००	२९२०	११·१०
२८७८०	८८०	१७३०	२९४०	९·८०
३३१३०	१०७०	२२००	२९५०	११·२३
३३६१०	११००	२३९०	२९७०	११·३१
३२३९०	१२३०	२१९०	२९९०	१०·८३
३५२३०	१४२०	२०५०	३०१०	११·७०
३९९ ०	१४६०	२७१०	३०२०	१३·२१
३९३४०	१४८०	२८७०	३०५०	१२·८९
४२०५०	१६९०	२७७०	३०७०	१३·६९
३६९७०	१७१०	२८००	३०९०	११·९६
३८०४०	२०४०	२२५०	३११०	१२·२३
३९७९०	२२००	२२६०	३१३०	१२·७१
४३२४०	२३८०	२६१०	३१५०	१३·७२
४९८२०	२५४०	२६००	३१५०	१५·८१
५१४६०	२४५०	२६७०	३१६०	१६·२८
४५३७०	२४७०	२९६०	३१६०	१४·३५
४२४८०	३१४०	२७२०	३१७०	१३·३६
३८५६०	३२२०	२०४०	३१७०	१२·१६
३५९७०	३४००	२०४०	३१७०	११·३४

के लिए परिशिष्ट सं० १ देखिए।

भारत में कपड़े और सूत

सन्	भारत में विदेशी कपड़े की नक्की खपत (कुल आयात में से वापिस निर्यात घटाकर) लाख गज	भारत में तैयार हुए कपड़े का परिमाण (लाख गज)		भारत में बने हुए कुल कपड़े का परिमाण खाना नं० ३ व ४ का योग (लाख गज)	भारतीय कपड़ा जो विदेश भेजा गया (लाख गज)	भारतीय कपड़े का परिमाण जो हिन्दुस्तान के लिए शेष रहा खाना ५-६ (लाख गज)
		मिलों में तैयार हुआ	हाथ-करघे से बुना गया			
१९१८–१९	९५५०	१४५१०	१०४८०	२४९९०	१८७०	२३१२०
१९१९–२०	८३६०	१६४००	५६४०	२२०४०	२३९०	१९६५०
१९२०–२१	१४०५०	१५८१०	११४८०	२७२९०	१७००	२५५९०
१९२१–२२	९८००	१७३२०	११९००	२९२२०	१८७०	२७३५०
१९२२–२३	१४६७०	१७२५०	१३४१०	३०६६०	१८६०	२८८००
१९२३–२४	१३७४०	१७०२०	१००५०	२७०७०	२०१०	२५०६०
(३) १९२४–२५	१७१००	१९७००	१२५६०	३२२६०	२३००	२९९६०
१९२५–२६	१५२९०	(४) १९५४०	११६००	३११४०	(५) १६४०	२९५००
१९२६–२७	१७५८०	२२५८०	१२९६०	३५५४०	१९७०	३३५७०
१९२७–२८	१९४००	२३५६०	१२९२०	३६४८०	१६९०	३४८००
(६)२८–२९	१९१२०	१८९३०	१११६०	३००९०	१४९०	२८६००
१९२९–३०	१८९७०	२४१८०	१४०४०	३८२२०	१३२०	३६८९०
१९३०–३१ अप्रेल, सित०	५७९०	१२२२०	...	...	४९०	...

(३) १९२४-२५ से १९२५ २६ के बीच बम्बई नगर और द्वीप की सारी

(४) १ अप्रेल १९२६ से पहले, वास्तव में कितना कपड़ा तैयार हुआ, के हैं जिस पर चुंगी लगी।

(५) १९०५-२६ की सालके लिए तो केवल समुद्र-मार्ग से निर्यात और

(६) सन् १९२८ में बम्बई नगर और द्वीप की सारी मिलें लगभग ६

सूचना—हाथ-करघों से कुल कितना माल तैयार हुआ इसके आंकड़े

संख्या १

की खपत सन् १८९६–९७ से १९३० तक

विदेशी और भारतीय कपड़े की कुल खपत खाना २ व ७ का योग (लाख गज)	मिलों में कितना सूत खपा (यह मानकर कि १०० पौंड सूत ११२ पौंड कपड़े के बराबर होता है) (लाख पाउण्ड)	हाथ-कर्घों के लिए कितना सूत शेष रहा (मिलका कता और विदेश का आया हुआ) (लाख पाउण्ड)	जन-संख्या (लाख)	कपड़े की खपत प्रति व्यक्ति (गज)
३२६७०	३१२०	२६२०	३१८०	१०·२७
२८०१०	३४३०	१४००	३१८०	८·८०
३९६४०	३२८०	२८७०	३१९०	१२·४२
३७१५०	३६१०	२९९०	३१९०	११·६४
४३४७०	३६२०	३३३०	३१९०	१३·६२
३८८००	३५९०	२५२०	३२००	१२·१२
४७०६०	४१००	३१४०	३२००	१४·७०
४४७९०	४१५०	२९[illegible]०	३२००	१३·९९
५११५०	४८१०	३२४०	३२००	१५·९८
५४२[illegible]०	५०७०	३२३०	३२००	१६·९३
४७७२०	३८४०	२७९०	३२००	१४·९१
५५८६०	५०१०	३५१०	३२००	१७·४५
...	...	...	...	...

मिलें क्रमशः लगभग २ और २॥ महीने तक बंद रहीं।
इसके आंकड़े नहीं लिये जाते थे। नक्शे में दिये हुए आँकड़े तो उस परिमाण
दोबारा निर्यात किये गये कपड़े के आँकड़े मिलते हैं।
महीने तक बन्द रहीं, और सन् १९२९ में लगभग ४॥ महीने तक बन्द रहीं।
इस प्रकार निकाले गये हैं कि हरसाल हाथकर्घों के उपयोग के लिए
२

१२. ऊपर दिये हुए नक़्शे से यह स्पष्ट हो जायगा कि हाथ-कर्घों के धंधे का अस्तित्व अभी मिटा नहीं है । और, जिन लोगों ने अपने अज्ञान से या दुराग्रह से या इसकी जाँच न करने के कारण यह माना है कि यह मिट गया, वे भूल करते हैं । बल्कि, हाथ-कर्घे तो इस देश की कुल वार्षिक खपत का लगभग २५ फी सदी (मोटे अनुमान से १२००० लाख गज) कपड़ा देते हैं, और कुल जितना कपड़ा

आजकल भी हाथ-कर्घों का महत्व; आवश्यकता का २५% कपड़ा तैयार करते हैं

जितना सूत शेष रहा, उसको चार से गुणा कर दिया । क्योंकि, यह माना गया है कि १ पाउण्ड सूत में ४ गज़ कपड़ा बुना जाता है । हाथ-कर्घों के उपयोग के लिए बचा हुआ सूत सारा ही हाथ-कर्घों के उपयोग में नहीं आता; कुछ अंश रस्सी, सुतली, धागा आदि बनाने में खर्च होता है, यह अनुमान किया गया गया है कि हाथ-कर्घों के लिए बचे हुए सूत में से लगभग १०% सूत इस कार्य में लग जाता होगा । परन्तु हाथ-कर्घों पर बनने वाले कपड़े का आँकड़ा निकालने में इस बात को हमने छोड़ दिया है, और वह यह मानकर कि हाथ-कता या चर्खे पर कता हुआ सूत भी तो हाथ-कर्घों को जरूर मिलता रहा होगा, और इसका परिमाण अनुमानतः १९२९-३० तक के लिए कुल सूत का १० प्रतिशत रहा होगा । १९२९-३० से तो हाथ-कते सूत का परिमाण काफ़ी बड़ा होगा क्योंकि बहुसंख्यक जनता में चर्खा फिर से चलने लगा । चर्खों से मिलने वाले सूत के बारे में कोई आँकड़े नहीं मिलते, पर इसमें तो शक नहीं हो सकता कि इसका परिमाण अधिक ही होगा । हाल के वर्षों में नकली रेशम का और चमकदार सूत भी बड़े परिणाम में आने लगा है, उसको भी हिसाब में नहीं लिया गया है ।

भारत में बनता है उसका ४० प्रतिशत उनके द्वारा ही तैयार होता है। (भारत में बनने वाला कुल कपड़ा मोटे हिसाब से ३८००० लाख गज समझा जा सकता है।) मार्च १९३० से तो मिलों में और हाथ-कर्घों पर बनने वाले भारतीय कपड़े का परिमाण बढ़ रहा है, और विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार के आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप, विदेशी कपड़े की आमद बहुत कम हो रही है।

१३—हाथ-बुनाई का धन्धा तो छोटा-सा और मृत-प्राय है

(पिछले पृष्ठ के नोट का शेषांश)

१९२५-२६ के बाद के सारे आँकड़े मैंने विविध प्रामाणिक सरकारी साधनों से संग्रह किये हैं।

ऊपर का नकशा मुख्यतः १९२७ की इण्डियन टैरिफ बोर्ड (कॉटन टेक्सटाइल इण्डस्ट्री एन्क्वायरी) की रिपोर्ट के अंकों, और श्री आर. बी. येल के सूती वस्त्र-व्यवसाय और प्रधानतः हाथ बुनाई सम्बन्धी नोटों पर से तैयार किया गया है। टैरिफ़ बोर्ड के अंकों में १९१६-१७ में मिलों में सूत कितना खपा और हाथ-कर्घों में कितना खपा, इसके बारे में जो ग़लती है, वह ऊपर के नक्शे में सुधार दी गई है। सन् १९२४-२५ में हिन्दुस्थान में खपत के लिए भारतीय कपड़ा कितना शेष रहा, विदेशी और भारतीय कपड़ा खपत के लिए कितना शेष रहा, और प्रति व्यक्ति कपड़ा कितना खपा, इस विषय के अंक भी रिपोर्ट में ग़लत हैं। यह भी सुधार दिये गये हैं।

मेरी पुस्तक "हिन्दुस्थानी सूती मिल—व्यवसाय, उसका भूत वर्तमान और भविष्य" के पृष्ठ ८४ पर, १९२३-२४ में भारतीय कपड़े की खपत और भारत में कुल कपड़े की खपत के आँकड़े ग़लत हो गये हैं। इस नक्शे में वे भी सुधार दिये गये हैं।

और वह मशीन-कर्घों के कारण अनिवार्य रूप से विलकुल कुचल ही जायगा, यह खयाल तो ऊपर के आँकड़ों से विलकुल साफ तौर पर ग़लत और वास्तव में निराधार सिद्ध होता है। इस उद्योग ने तो वड़ी दृढ़ता से अपनी स्थिति वना रक्खी है। और हाल में जव से महात्मा गाँधी-जैसे प्रभावशाली व्यक्ति का खद्दर-आन्दोलन चला है और जव से वे इस वात पर वड़ा ज़ोर देने लगे हैं कि 'चर्खा और हाथ-कर्घा चलाओ और देश में ही कपड़ा वनाओ, इससे उन लाखों देश-वासियों को काम मिलेगा जो वहुत समय तक वेकार रहते हैं, और इस प्रकार उनकी आमदनी और खरीदने की ताकत वढ़ेगी और इससे उनके जीवन-निर्वाह की कोटि भी ऊँची उठेगी', तव से तो इस उद्योग को और भी वल मिला है। और फिर मशीन-कर्घों की अपेक्षा हाथ-कर्घों में वहुत से अधिक गुण भी हैं। तव तो हाथ-कर्घों का नष्ट होना अनिवार्य है, यह सिद्धान्त विलकुल खड़ा ही नहीं रह सकता। इसलिए इसमें विलकुल सन्देह नहीं है कि मशीन के कर्घों के द्वारा कपड़ा वनते रहने पर भी, भारत में हाथ-वुनाई और हाथ-कताई के उद्योगों का महत्व खूव वढ़ेगा।

हाथ-वुनाई और हाथ-कताई के धन्धे का भविष्य

१४—अव हमें संक्षेप से इस वात पर विचार करना चाहिए कि मशीन-कर्घों की अपेक्षा हाथ-कर्घों में क्या अधिक गुण हैं।

मशीन-कर्घों की अपेक्षा हाथ-कर्घों के विशेष गुण

हाथकर्घों में पूँजी कम लगती है, क्योंकि मशीन-कर्घे की कीमत तो लगभग ९००) होगी और हाथ-कर्घे की लगभग २०) ही समझनी चाहिए। हाथ-कर्घों के लिए गाँवों में सस्ते

मजदूर मिल सकते हैं। हाथ-कर्घे ग्रामीण जीवन के उपयुक्त होते हैं। माल वेचने के लिए उनका बाजार पास ही रहता है। वे, ग्रामीण लोगों की रुचियों और आवश्यकताओं का खूब परिचय होने के कारण ग्रामीण प्रदेशों की माँग पूरी कर सकते हैं। हाथ-कर्घों पर लोग अपनी ही झोंपड़ी में अपने ही लिए काम कर सकते हैं। हाथ-कर्घों का काम चाहे जिस समय शुरू किया जा सकता है और चाहे जिस समय छोड़ा जा सकता है। इसमें परिवार के लोगों से मदद मिल सकती है। इसमें श्रमिकों को कारखानों के समान अनेक कष्ट नहीं है; इसमें यन्त्रवाद की जोखमें, दुर्घटनाएँ, दुराचार आदि बुराइयाँ नहीं हो सकतीं। घर पर हाथ-कर्घे से काम करने में अधिक स्वास्थ्यकर और सुखद वातावरण रहता है। इसमें पारिवारिक जीवन का विच्छेद नहीं होता; उच्च और धनाढ्य वर्ग के लोग उन सुन्दर और हाथ-बनी चीजों को अपनाते हैं जिनमें कारीगर की व्यक्तिगत कुशलता दिखलाई जा सकती है। हाथ-कर्घों पर थोड़ा-थोड़ा और तरह तरह के और नये-नये नमूनों का कपड़ा तैयार किया जा सकता है, पर मशीन के कर्घों पर, जबतक माँग बड़े परिमाण में न हो, ऐसा नहीं हो सकता। किसानों का या स्वदेशी कपड़े का व्रत लेने वालों का कता हुआ सूत भी हाथ-कर्घों से ही अच्छी तरह बुना जा सकता है। और जिन लोगों ने केवल स्वदेशी कपड़ा खरीदने का ही निश्चय किया है, उनकी माँग तो हाथ-कर्घों के कपड़े के लिए निश्चित रूप से स्थायी रहती ही है। हाथ-कर्घों के उद्योग में इसी प्रकार के अनेक गुण हैं। ऊपर बताये हुए विविध गुणों को पश्चिमी निरीक्षकों ने भी

ठीक माना है। सर डेनियल हेमिल्टन ने कहा है—"भारतीय ग्रामीण जीवन के मेरे व्यक्तिगत अनुभव से मैं कह सकता हूँ कि यदि आधुनिक ढंग की धन-संबंधी सहायता मिल सके तो चर्खा ही नहीं, हाथ-कर्घा भी, सफलता से मशीन-कर्घे का मुकाबला कर सकता है, कारण यह है कि जो चार महीने आजकल कृषि की बेकारी में अधिकांश में बरबाद कर दिये जाते हैं, उन दिनों काम कर लेने का खर्चा कुछ भी नहीं पड़ता। यदि केवल कच्चे माल की कीमत ही लगे, तो उससे अधिक सस्ता अनाज या कपड़ा हो ही नहीं सकता (८)।"

चर्खे और हाथ-कर्घे वाष्प-यन्त्रों से प्रतियोगिता कर सकते हैं—सर डेनियल की राय

सर एल्फ्रेड चेटरटन ने भी अपनी पुस्तक "भारत में औद्योगिक विकास" के पृष्ठ १०५ पर लिखा है—

"भारत के हाथ-कर्घे के बुनकरों ने बड़ी कठिनाइयों में भी मशीन-कर्घों के मुकाबले को सहा है और वे अभी तक बचे रहे हैं, इस बात से प्रकट होता है कि देश (भारत) के लोगों में तीव्र पाश्चात्य व्यापारवाद के सामने भी अपने प्रारंभिक तरीकों और पुश्तैनी धंधों को पकड़े रहने की बड़ी प्रवृत्ति है।"

१५. यहाँ यह भी देख लेना चाहिए कि आज भी हाथ-

---

(८) देखिए, यंग इण्डिया ता० ८ मार्च १९२२

करघे ऐसा माल तैयार करने में समर्थ हैं जो देखने में बड़ा नफीस और स्पर्श करने में बड़ा सुखद होता है; और वे अनुभव-हीन चर्खे या तकली कातनेवालों के उस सूत का कपड़ा भी बुन सकते हैं जो कहीं मोटा और कहीं पतला होता है (पर मशीन के करघे ऐसा नहीं कर सकते)। परन्तु हाथ-बुने कपड़े को यथाशक्ति मिल के बने कपड़े का मुकाबला न करना चाहिए। सर जार्ज वाट्स ने भी बताया था—

हाथ-बुनैयों की रक्षा इसी में है कि वे मिलों में न बनने वाले माल तैयार करें

"हाथ-करघे के बुनकर की रक्षा इसी में है कि उसका तैयार किया हुआ कपड़ा अपने परिचित स्थानीय बाजारों के ही योग्य सुन्दर या विशेष प्रकार का हो। बड़े-बड़े बाजारों के लिए व्यापारिक चीजें बनाने में उसका बचाव नहीं है।"

इसलिए हाथ-बुनैयों को जहाँ तक संभव हो यही प्रयत्न करना चाहिए कि वे मशीन-करघों से न बन सकने वाला माल ही बनायें, जैसे कि, पेचीदा ढंग से मिलाये हुए, जटिल प्रकार के या बहुरंग डिजाइनों के कपड़े या खास लंबाई-चौड़ाई रूप-रंग की साड़ियाँ और लुंगी आदि ऐसे कपड़े जिनकी नियमित और स्थायी माँग नहीं होती। ऐसा करने से मिल-मालिक उनका मुकाबला करना लाभदायक नहीं समझेंगे।

१६. यह एक विचार है कि हाथ-करघे मिलों की प्रतियोगिता करते हैं। इस बारे में मैं बम्बई मिल-मालिक-संघ के प्रमाण से बता

हाथ-कर्घों और मिलों में सीधा मुकाबला नहीं है, मिल-मालिक हाथ-कर्घों की उन्नति के पक्ष में हैं

देना चाहता हूँ कि मशीन-कर्घों का माल हाथ-कर्घों के माल की प्रतियोगिता नहीं करता। और बम्बई मिल-मालिक-संघ का यह कहना भी है कि भारत के मिल-मालिक हाथ-कर्घों के व्यवसाय की उन्नति के विरोधी तो हैं ही नहीं। प्रत्युत वे हृदय से उसका प्रोत्साहन और सुधार चाहते हैं; कारण यह है कि अपने मशीन-कर्घों पर अपना कपड़ा बुन लेने के बाद बचा हुआ सूत अब चीन के बाजार में तो भेजा ही नहीं जाता (वह बाज़ार नष्ट हो गया है), और इसलिए हाथ-कर्घों का व्यवसाय ही केवल उनके शेष सूत के लिए एक बाज़ार रहा है। जो लिखित बयान बंबई-मिल-मालिक-संघ ने फ़िस्कल कमीशन के सामने दिया था, उससे भी उनकी हाथकर्घों के उद्योग के प्रति सहानुभूति प्रकट होती है। उन्होंने लिखा है—

"यह कमिटी हाथ-कर्घों के वस्त्र-उद्योग को बनाये रखने के प्रबल पक्ष में है। इस उद्योग से भारत के कृषिजीवी लोग अपनी

ख़ास-ख़ास नमूनों में सुसंगठित हाथ-कर्घे मशीन-कर्घों से प्रतियोगिता कर सकते हैं।

आय बढ़ा सकते हैं, और यदि इसका उचित संगठन हो जाय, तो हाथ-कर्घे किसी प्रकार के कपड़े में मशीन-कर्घों का भी मुकाबला करने और लाभ उठाने योग्य बनाये जा सकते हैं।

मिल-मालिक यह भी कहते हैं कि हाथ-कर्घों का उद्योग तो एक ऐसा उद्योग है जो उनसे हर साल लगभग ३००० लाख पौंएड सूत खरीदता है। इनके माल की माँग जनता में बढ़ रही है, और जनता में मिल के या हाथ-कते भारतीय सूत को व्यवहार

में लाने की इच्छा होने से ये विदेशी सूत (महीन कपड़े बनाने के लिए विदेशी सूत हाल में काम में लाया जा रहा है) की जगह भारतीय सूत ले रहे हैं।

इस कारण सम्भवतः आगे के वर्षों में हाथ-करघे मिल-मालिकों से और भी अधिकाधिक सूत खरीदेंगे। ऐसी अवस्था में यदि वे किसी ऐसी नीति का साथ देंगे, जिससे इस उद्योग की उन्नति में हानि या बाधा पहुँचे, तो वे अपना ही नाश करेंगे। मिलों के माल और हाथ-करघों के माल में कोई प्रतिस्पर्धा है या नहीं, इस सीधे प्रश्न पर बंबई के भूतपूर्व डायरेक्टर आव् इण्डस्ट्रीज श्री आर. डी. बेल की राय से सभी सहमत होंगे—

"मिल-उद्योग और हाथ-करघों का उद्योग वास्तव में एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। हाथ-करघे से बनने वाला बहुत-सा कपड़ा कुछ ऐसे खास परिमाण या प्रकार का होता है कि उस तरह का कपड़ा इकट्ठा बनाया जाना उचित नहीं है।"

"मिलों और हाथ-करघों का सीधा मुकाबला तो आजकल बहुत कम है। हाथ-करघों में मिल का सूत बहुत बड़े परिमाण में खपता है। हाथ-करघों के उद्योग में सबसे बड़ा सुधार शायद यही हुआ है कि पहले तो उसमें जो सूत लगता था वह प्रायः मोटा होता था, और वह भी एक-सा नहीं, पर अब बड़े परिमाण में मिल का सब नम्बरों का और एक-सा सूत लगने लगा है।"

डाक्टर राधाकमल मुकर्जी भी अपनी पुस्तक "भारतीय अर्थशास्त्र का आधार" में लिखते हैं कि मशीन-करघों और हाथ-करघों की प्रतिस्पर्धा का ख्याल गलत है।

"हाथ-करघा मिल का मुकाबला नहीं करता, वह तो इन

तरीक़ों से उसकी पूर्ति या सहायता करता है—(१) वह ऐसी ख़ास क़िस्मों का माल बनाता है जो मिलों में नहीं बन सकता। (२) वह उस सूत को काम में ले लेता है जो अभी मशीन-कर्घे पर काम में नहीं आ सकता। (३) वह कताई की मिलों का फालतू बचा हुआ सूत काम में ले लेगा, उसे बाहर भेजने की ज़रूरत नहीं। (४) हाथ-कर्घे का उद्योग प्रधानतः ग्रामीण उद्योग है, वह स्थानीय मांग को पूरी करता है, और साथ ही पूंजीवालों, जुलाहों और दूसरे श्रमिकों को काम देता है। (५) अन्त में, शिक्षित भारतीयों के काम करने और उनको आजीविका देने के लिए बहुत समय से जिस एक अच्छे क्षेत्र की आवश्यकता थी उसकी पूर्ति भ इससे होगी।

हाथ-बुना कपड़ा मशीन के कपड़े से सदा ही महंगा नहीं होता—

१७.—जिस युग में आर्थिक प्रगति के लिए यान्त्रिक अविष्कार ही मुख्य साधन हैं उसमें यह आश्चर्य की बात है कि किसी-किसी बात में हाथ-बुना माल भी इतना बढ़िया होता है कि उससे बढ़कर आधुनिक मशीनों का माल भी नहीं है। डिज़ाइन, ढंग, और क़िस्म की बातों को जाने भी दीजिए, तो भी हाथ-बुने कपड़े के 'स्पर्श' में ही सचमुच ऐसी बात है कि वह सब देशों के लोगों को अच्छा लगता है।

भारतीय हाथ-कर्घों के व्यवसाय में मशीन-कर्घों की अपेक्षा उपर्युक्त श्रेष्ठता सदा दिखलाई दी है, परन्तु औसत हिन्दुस्थानी को

ख़रीदते वक़्त सस्तेपन का ही प्रधान ध्यान

ग़रीबी के कारण हर-एक माल ख़रीदते वक़्त सस्तेपन का ही मुख्य ध्यान रखना पड़ता है और इसलिए जनता में इस बात का

मान धीरे-धीरे और कठिनता से हुआ है। इस बात से भी हाथ-कर्घे के व्यवसाय का पतन हुआ है कि मशीन का बना माल सस्ता मालूम होता है, और इससे जनता उस ओर बरबस खिंच जाती है। हाथ-कर्घों पर बना हुआ कपड़ा मशीन के कपड़े से हर हालत में महंगा नहीं पड़ता। भले ही बहुत माल एक साथ तैयार करने और यन्त्रों की सहायता लेने से मशीन का कपड़ा सस्ता कहा जाय, पर हाथ-बुना कपड़ा ज्यादा टिकता है। हाथ-बुने कपड़े में और भी इसी प्रकार के कई गुण हैं।

हाथ-बुने कपड़े में अनेक गुण

१८. होल्कर राज्य के वस्त्र-विशेषज्ञ श्री वी० ए० तालचेरकर ने 'चर्खे के सूत'-विषयक अपनी किताब में लिखा है कि यदि कपास ओटने से लेकर कपड़ा बुनने तक की सारी क्रिया हाथ से की जाय, तो इस प्रकार तैयार किये हुए माल का पोत, मजबूती और टिकाऊपन तो बिलकुल अतुलनीय होता है। और हाथ-बने कपड़े में ये गुण चिरस्थायी होते हैं। इसके लिए उन्होंने वैज्ञानिक प्रमाण भी दिया है। वे कहते हैं कि श्री इरेस्मस विल्सन का मत है कि मशीन का तैयार किया हुआ सूत कमजोर होता है और हाथ-कता सूत मजबूत होता है। भारतीय कतैये कातते समय अपने अंगूठे और उँगलियों के सिरों से बड़ी आश्चर्यजनक क्रिया करते हैं। तकुओं से सूत में बल लगता है, और इसी प्रकार के अन्य कारणों से श्री तालचेरकर का खयाल है कि हाथ-कता सूत मशीन के सूत से अधिक एक-सा और अधिक मजबूत होता है। इसके अलावा हाथ-कता सूत तो साधारणतया एक ही प्रकार और एक ही जाति की रुई से तैयार होता है। परन्तु मिलों को तो तरह-

तरह की और कई कीमतों की रुई मिलाने से ही लाभ हुआ करता है इसलिए मशीन-कता सूत कई जातियों की मिश्रित रुई से तैयार होता है। इस कारण हाथ-कता सूत मशीन-कते सूत से बढ़िया होता है। हाथ-कता सूत साधारणतया मशीन-कते सूत से ज्यादा मज़बूत और अच्छा होता है, श्री तालचेरकर की इस राय का खंडन कई प्रामाणिक लोगों ने किया है। इन और खण्डन करने वाले लोगों में हाथ-बुनाई के उद्योग से विरोध न रखनेवाले कई मिल-मालिक और बुनाई के विशेषज्ञ लोग भी हैं। भारत का हाथ-कता सूत मशीन-कते सूत से बढ़िया होता है, यह बात उस ज़माने में तो अधिक ठीक रही होगी, जब कि कत्तैये बहुत ही होशियारी के साथ महीन और अच्छा बल-दार सूत तैयार करते थे, और उस सूत से जगद्विख्यात भारत का कपड़ा बुना जाता था। पर आजकल तो इसको कोई भी जल्दी नहीं मान सकता।

हाथ कता सूत बढ़िया होता है, इस का खण्डन कई प्रामाणिक लोगों-द्वारा

महात्मा गाँधी हाथ-कताई के बड़े पक्षपाती हैं, परन्तु वे भी लिखते हैं कि श्री तालचेरकर का यह दावा अनुभव से सत्य सिद्ध नहीं होता।* हम जानते हैं कि हाथ-कते सूत के ऊपर वैसी

---

* यह बात महात्माजी ने लेखक को एक पत्र में लिखी है। वे आगे लिखते हैं—"पर इससे क्या मतलब ? दोनों सूतों में मुकाबला करना ही नहीं चाहिए। मशीन-बने बिसकिट, हाथ-बनी रोटी की अपेक्षा कितने ही अधिक गोल, चिकने और आकर्षक क्यों न हों, वे हाथ-बनी रोटी के सामने अग्राह्य ही रहेंगे।"

सख़्त क्रियायें नहीं होतीं जैसी रुई पर मशीनों द्वारा होती हैं, और हाथ-कते सूत का प्रत्येक रेशा मिल-कते सूत के रेशे से अधिक मज़बूत और लचीला होता है, और तैयारी की क्रियायें हलके-हलके होने से हाथ-कते सूत में अधिक मुड़ने और लचकने की क्षमता होती है, फिर भी इसमें सन्देह नहीं है कि जो हाथ-कता सूत साधारणतया मिलता है वह न तो बहुत अच्छी तरह बल लगा हुआ ही होता है और न बहुत एक-सा ही होता है। इसलिए यद्यपि कई कारण ऐसे अच्छे तो हैं कि चर्खे द्वारा बढ़िया सूत निकाला जा सकता है, फिर भी हमारा अनुभव यह है कि आज-कल कतैये बढ़िया सूत तैयार करने की अधिक परवाह नहीं करते और यह भी मानना पड़ेगा कि नये कातनेवालों का और अनभ्यस्त लोगों का कता हुआ सूत कमज़ोर होता है। आगे एक जगह यह बताया गया है कि आजकल कतैये स्वयं ही ओटाई और धुनाई आदि कर लेते हैं, और अपने इस्तैमाल के लिए अच्छी रुई जमा रखने के महत्व को भी समझते हैं, इसलिए आगे हाथ-कते सूत की क़िस्म अवश्य ही सुधरेगी। आजकल हाथ-कते सूत की क़िस्म हलकी इसलिए होती है कि कतैये को सूत कातने के लिए रुई अच्छी नहीं मिलती। फ़सल की अच्छी-अच्छी रुई तो भारतीय मिलें ले लेती हैं या दूसरे देशों को भेज दी जाती हैं। पर हाथ-कताई करनेवाला किसान अब अपना हित अधिक अच्छी तरह समझने लगा है और वह निःसन्देह शीघ्र ही अपने लिए आप रुई जमा करने लगेगा।

आज-कल हाथ-कते सूत की किस्म हलकी होने के कारण—बुरी रुई

दूसरा दोष जो दिखाई देता है, वह है कि ऊँचे नम्बर के सूत

के लिए लोग बहुत लालायित हैं। कतैया यदि अच्छे ढंग से रुई के रेशों को कातें, तो जिस छोटे रेशे वाली रुई से मिलों में मोटा ही सूत कतता है, वह उससे अधिक ऊँचा नम्बर निकाल तो सकता है, परन्तु जब हम रुई की शक्ति से अधिक ऊँचा नम्बर निकालने लगते हैं तभी तो सूत शीघ्र टूटनेवाला और बुनाई के अयोग्य हो जाता है।

ऊँचे नंबर के सूत की चाह

आजकल का हाथ-कता सूत बढ़िया होता है या नहीं, इस विवाद को छोड़ भी दें, तो भी इस बात से तो कोई इनकार नहीं करेगा कि यदि कतैया विशेष चिन्ता रखकर काम करे, तो मशीन-कते सूत से मजबूत हाथ-कता सूत तैयार कर सकता है, वह अपना हित भी अधिक अच्छी तरह समझता है, इसलिए जरूर ही अपने पूर्वजों की-सी कुशलता प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा।

हाथ-बुने कपड़े के और भी कई ऐसे गुण हैं जो उसको काम में लानेवालों को अपने अनुभव से मालूम हैं। इन गुणों के बाबत तो कोई विवाद हो ही नहीं सकता।

हाथ-बुनकरों को ज्ञात, हाथ-बुने कपड़े के गुण

मैं यहाँ कुछ गुणों का उल्लेख करता हूँ—(१) हाथ-बुना कपड़ा नरम कते हुए सूत के कारण पहनने में अधिक नरम और आराम-देह होता है। (२) वह गर्मी में ठण्डक पहुँचाने-वाला और जाड़ों में गरम रखनेवाला होता है। (३) वह अधिक लचीला और पसीना सोखनेवाला होता है। (४) उसके पहनने से कपड़ा कम परिमाण में खर्च होता है। (५) वह घर पर जल्दी धुल जाता है उसमें कपड़े आदि की ज़रूरत नहीं होती।

(६) वह हिन्दुस्थान की धुलाई के ढंग को अधिक अच्छी तरह बरदाश्त कर सकता है।

श्री एर्नो एस० पियर्स 'भारत का सूती वस्त्र-व्यवसाय'—विषयक अपनी पुस्तक में इस बात को मानते हैं कि हाथ-कर्घों का माल टिकाऊ होता है और अधिक दिन चलता है। वे लिखते हैं—"हाथ-कर्घों पर बुने हुए कपड़े में यह अधिक गुण है कि वह भारतवर्ष की धुलाई के प्रारम्भिक तरीक़े को (अधिक अच्छी तरह) बरदाश्त कर सकता है। संक्षेपतः लोग मानते हैं कि घर का कता और बुना कपड़ा टिकाऊ होता है। इस प्रकार के कपड़ों को 'खद्दर' कहते हैं। खद्दर को अधिक व्यवहार में लाने का आन्दोलन तो अवश्य ही बढ़ा है।"

महात्मा गाँधी खद्दर के गुण बताया करते । ऊपर यह बता दिया गया है कि ये गुण वह किसी दुराग्रह या पक्षपात के कारण नहीं बताते, किन्तु उनका कथन तथ्यों पर अवलम्बित है और उनका समर्थन उन लोगों के अनुभव से भी होता है जो स्वयं खद्दर-वस्त्र धारण करते हैं।

हाथ-बुनाई सुधारने के प्रयत्नों का सिंहावलोकन

१९. यह तो हम सिद्ध कर ही चुके कि हाथ-कर्घों का व्यवसाय मिल-व्यवसाय का मुकाबला नहीं करता, और हाथ-बुना कपड़ा मशीन के कपड़े से अधिक टिकाऊ होता है। अब जो-जो प्रयत्न हाथ-कर्घों के सुधार के लिए हुए हैं हम उनका सिंहावलोकन करेंगे। हाथ-कर्घों पर वर्तमान स्वदेशी आन्दोलन का क्या-क्या प्रभाव पड़ा, और इस आन्दोलन के कारण उनके प्रबन्ध और तरीक़ों आदि में क्या-क्या

परिवर्तन होना चाहिए, जिससे देश की वस्त्रोत्पत्ति में उनका स्थान बना रहे और मजबूत हो सके, इन्हीं बातों पर हम विचार करेंगे। पहले हम फ्लाई-शटल कर्घों को लेते हैं।

फ्लाई-शटल कर्घों के प्रचार से काम ज़्यादा होगा—

यह माना जाता है कि साधारण हाथ-कर्घों की अपेक्षा फ्लाई-शटल कर्घों से ५० से लेकर १०० प्रतिशत तक अधिक काम होता है। परन्तु अब तक हमारे बुनकरों ने फ्लाई-शटल कर्घों के महंगे होने के कारण, तथा नये साधनों से कम काम लेने की प्रवृत्ति के कारण, फ्लाई-शटल कर्घों से काम लेना पसंद न किया। पहले यह माना जाता था कि जो मोटा सूत फ्लाई-शटल कर्घे पर बाने में अतिशीघ्रता से नहीं चल सकता है वही उसके ताने के काम में आ सकता है। दूसरा सूत काम नहीं दे सकता। पर यह विश्वास तो कभी का खण्डित हो चुका है। श्री चेटरटन कहते हैं कि बारीक नम्बरों का सूत भी आसानी से ताने में काम आ सकता है—सालेम फैक्टरी में जो सूत काम में आता है उसका अधिकांश भाग ६० और १०० नम्बर के बीच का होता है, और ताना तो और भी ऊँचे नम्बर का हो सकता है।

श्री चेटरटन कहते हैं—

"यदि महीन देशी कपड़ा हाथ से तैयार करने में अधिकतर फ्लाई-शटल-कर्घा काम में लाया जाय तो बाने के धागे ने कितने चक्कर काटे इसकी रफ्तार बढ़ाने की इतनी जरूरत नहीं है, (क्यों कि वह तो आजकल भी काफ़ी तेज़ है)। जरूरत तो इस बात की है कि स्लाई (slay) को पकड़ने और चलाने के काम में

सुधार किया जाय, ताकि नाज़ुक धागों पर बुनाई में कम-से-कम जोर पड़े।"

श्री चेटरटन ने मालूम किया है कि केवल एक उदाहरण ऐसा है जिसमें हाथ-कर्घों पर दैनिक औसत बुनाई प्रति मिनट बाने के ३० फेरे (पिक) से अधिक हुई। महीन कपड़े की बुनाई में प्रति मिनट बाने के २०-२५ फेरे (पिक) को बहुत अच्छा काम समझा जा सकता है। अहमदनगर के श्री चर्चिल अहमदनगर में एक मिनिट में ६० फेरे (पिक) निकाल सके थे, जो बहुत ही असाधारण और अच्छा परिणाम है।

सुधरे हुए फ्लाई-शटल कर्घे लगाने से भी २५ से लेकर ४० प्रतिशत तक अधिक उत्पत्ति हुई है।* तामिल जिलों में फ्लाई-शटल कर्घे बहुत काम में आने लगे हैं। हैदराबाद जिले में फ्लाई-शटल कर्घों की संख्या ८४३९२ है, दूसरे प्रकार के कर्घे केवल ३१०४२ हैं। बंगाल में लगभग दो-तिहाई कर्घे फ्लाई-शटल वाले हैं। प्रायः सब प्रान्तों में फ्लाई-शटल कर्घों का व्यवहार बढ़ता हुआ दिखाई देता है और इससे यह बात सिद्ध होती है कि उनकी उपयोगिता हाल में मानी जाने लगी है, और बुनकर लोगों ने भी इसकी कद्र की है। यदि फ्लाई-शटल हाथ-कर्घे और उनका सामान कुछ कम दामों में दिलाया जा सके और यदि बुनकर उन्हें सरलता से पा सकें तो मुझे विश्वास है कि जनता में उनका अधिक व्यवहार होने लगेगा।

२१. विदेशी सूतको हाथ-कर्घे और मिलें महीन कपड़ा निकालने

* भारत का औद्योगिक विकास— अल्फ्रेड चटरटन, पृष्ठ २३८

के लिए लेती हैं। परन्तु स्वदेशी सूत के व्यवहार करने की प्रवृत्ति तो बढ़ रही है। इस कारण भविष्य में देश के लिए कपड़ा बनाने में विदेशी सूत का व्यवहार छोड़ देना पड़ेगा। युद्ध-पूर्व वर्ष (१९१३-१४) से लेकर १९२९-३० तक विदेशों से कितना-कितना सूत आया, और भारतीय मिलों में कितना-कितना बना, यह नीचे के नक़शे में दिया हुआ है। इस नक़शे से मालूम होगा कि विदेशों से आने वाले सूत की मात्रा घट रही है, भारतीय मिलों की सूत की उत्पत्ति बढ़ रही है और १९२९-३० में आने वाले सूत की मात्रा युद्ध-पूर्व वर्ष (१९१३-१४) की मात्रा के लगभग बराबर है। संयुक्त-राज्य और जापान से भारत को कितना-कितना सूत आया यह भी नक़शे में बताया गया है।

विदेशी सूत का व्यवहार मिलों और हाथकघों द्वारा उसके त्याग की आवश्यकता

नक़शा सं० २.

सन् १९१३-१४ से १९२९-३० तक विदेशी सूत कितना आया, और भारतीय मिलों में कितना उत्पन्न हुआ, तथा संयुक्त-राज्य व जापान से सन् १९२०-२१ से लेकर अबतक कितना-कितना सूत आया, इसका परिमाण ।

सन्	कुल आयात (लाख पाउण्ड)	संयुक्त राज्य से कितना आया (लाख पौण्ड)	जापान से कितना आया (लाख पौण्ड)	भारतीय मिलों में कितना तैयार हुआ (लाख पौण्ड)
१९१३-१४	४४०	—	—	६८२०
१९१४-१५	४२०	—	—	६५१०
१९१५-१६	४००	—	—	७२२०
१९१६-१७	२९०	—	—	६८१०
१९१७-१८	१९०	—	—	६६००
१९१८-१९	३८०	—	—	६१५०
१९१९-२०	१५०	—	—	६३५०
१९२०-२१	४७०	२३०	२००	६६००
१९२१-२२	५७०	४००	१५०	६९३०
१९२२-२३	५९०	२१०	२६०	७०५०
१९२३-२४	४४०	२१०	२००	६१७०
१९२४-२५	५५०	२००	३२०	७१९०
१९२५-२६	५१०	१६०	३३०	६८६०
१९२६-२७	४९०	२००	२६०	८०७०
१९२७-२८	५२०	२००	१७०	८०८०
१९२८-२९	४३०	२२०	७०	६४८०
१९२९-३०	४३०	२००	१००	८३३०
१९३० (अप्रैल से सितंबरतक)	१५०	६०	४०	३७२०

किस-किस नम्बर का कितना-कितना सूत विदेशों से आया और कितना-कितना भारत में उत्पन्न हुआ

२२. नीचे के नक़शे में यह बताया गया है कि सन् १९१३-१४ के मुकाबले पिछले छः वर्षों में किस-किस नम्बर का कितना-कितना सूत विदेशों से आया और कितना-कितना भारत में उत्पन्न हुआ।

नक़शा सं० ३

युद्ध-पूर्व वर्ष के मुक़ाबले १६२४-२५ से लेकर १६२६-३० तक किस-किस नंबर का कितना-कितना सूत विदेशों से आया और भारत में उत्पन्न हुआ ?

किस२ नम्बर का सूत कितना२ बाहर से आया और कितना२ देश में उत्पन्न

	१९१३-१४ (युद्धपूर्व वर्ष)		१९२४-२५		१९२५-२६	
	आयात	उत्पत्ति	आयात	उत्पत्ति	आयात	उत्पत्ति
	पौण्ड १०००	पौण्ड १०००	पौण्ड १०००	पौण्ड १०००	पौण्ड १०००	पौण्ड १०००
रुई का सूत व धागा—						
नं० १से २० तक	१२५४	४९२६९३	७१७०	४६९८१०	४७७२	४४४७४८
,, २१से २५ तक	८९६	१२३९९५	४७७	१५४६७२	५४३	१४२७५९
,, २६से ३० तक	३६८६	४२९९९	९३४	६९१४०	५७५	७१०२९
,, ३१से ४० तक	२३६५७	१९७१२	२१६८७	१९३६८	२६२९४	१९७३८
,, ४०से ऊपर	७८५९	२६९९	७६५९	५८२२	६६८५	५८३४
दोहरा या दोबला	...	...	(क) ५८३२	...	(क) ६१९५	...
ऐसा सूत जिसका वर्णन नहीं मिलता और रद्दी सूत	६८१९	६७९	(ख) ६१४७	५७८	(ख) ६६२४	२३१९
योग	४४१७१	६८२७७७	५५९०७	७१९३९०	५१६८८	६८६४२७

(क इसमें सफेद और दोवला सूत एवं मसाले लगाकर चमक पैदा १९२७ से ही रक्खे जाते हैं।

(ख) अलग-अलग नम्बर का सफेद सूत व धागा जो अप्रैल१९२७ पहले यह'ऐसा सूत जिसका वर्णन नहीं मिलता'इस विभाग के अन्तर्गत था।

(ग) अप्रैल १९३० से अक्टूबर १९३० तक सात महीनों में भारत में १९२९ के इसी अरसे में ४५३० लाख पौण्ड था। अप्रैल १९३० से १८० लाख पाउण्ड था, और १९२९ के इसी अरसे में २२० लाख

हुआ—सन् १९२४-२५ से १९२९ ३० तक, तथा युद्धपूर्व वर्ष १९१३-१४.

१९२६-२७		१९२७-२८		१९२८-२९		१९२९-३० (ग)	
आयात	उत्पत्ति	आयात	उत्पत्ति	आयात	उत्पत्ति	आयात	उत्पत्ति
पौण्ड १०००	पौण्ड १०००	पौण्ड १०००	पौण्ड १०००	पौण्ड १०००	पौण्ड १०००	पौण्ड १०००	पौण्ड १०००
१०६८	५१५६८१	२४६५	४९४८००	१०९८	३८२०२४	१०२७	४९३३८८
४८३	१६८३४५	४१६	१८२२३५	५४८	१४०१७५	२९०	१८१२६१
४७०	७९९६६	४३९	८०८३६	२२३	७२८३८	३९५	९०५४२
२४४०५	२७६५७	२७३०५	३३७५७	१९९३७	३७४८८	२००५०	४६३६३
७५६२	११५३१	८०४०	१११४२	९३३१	१० २९	९०१३	१५२७८
(क) ७१४६	...	१३६३३	...	१२६०४	...	१३०५३	...
(ख) ८२९१	३९३६	४७	६१७०	२५	५७२९	३४	६७१०
४९४२५	८०७११६	५२३४५	८०८९४०	४३७६६	६४८२८३	४३८८२	८३३५४२

किया हुआ दोपला सूत शामिल नहीं है । इनके पृथक् आंकड़े अलग

से पृथक् बताया गया है, ऊपर उल्लिखित विभागों के ही अन्तर्गत है ।

में सूत की उत्पत्ति का परिमाण ४१५० लाख पौण्ड था। इनके मुकाबले
अक्टूबर १९३० के सात महीनों में विदेशी सूत के आयात का परिमाण
पाउण्ड था ।

२३. ऊपर के नक़शे से यह मालूम होगा कि भारतीय मिलों में तैयार होने वाले २६ से लेकर ३० नम्बर तक के और ४० से ऊंचे नंबर के सूत की मात्रा खूब बढ़ी है। १९२८-२९ तथा १९२९-३० में ३१ से ४० नम्बर तक का और ४० से ऊंचे नंबर का सूत विदेश से क्रमशः २०० लाख पाउण्ड और ९० लाख पाउण्ड आया*। इन नम्बरों का सूत अब भी काफ़ी आता है, परन्तु मोटे नम्बरों के सूत का आना सन् १९२७ के काटन यार्न एमेण्ड-मेण्ट ऐक्ट के अनुसार -)॥ फी पाउण्ड विशेष कर लगने के कारण कुछ कम हुआ है। यह बताना कठिन है कि विदेश से आये हुए कुल सूत में से कितना प्रतिशत सूत हाथ-कर्घे ले लेते हैं। दोबला (Doubled) सूत १९२९-३० में १३० लाख पाउण्ड आया था। मेरा ख्याल है कि इसको छोड़ कर शेष विलायती सूत बंबई की मिलों में खूब व्यवहार में आता है। परन्तु अहमदाबाद की मिलों में १९२९-३० तक विदेशी सूत काफी बड़ी मात्रा में खपता रहा है। मार्च १९३० से विदेशी वस्त्र के बहिष्कार का आन्दोलन भारत की राष्ट्रीय महासभा की वर्किंग कमेटी की आज्ञा के अधीन पूरे जोश और बल के साथ उठा। तब से तो बहुत ही अधिक मिलों ने कपड़ा तैयार करने में विदेशी सूत काम में न लाने की प्रतिज्ञा करली है। मिलों में विदेशी सूत कितना खप जाता है इसके

हाथ-कर्घे कितना प्रतिशत विदशी सूत काम में लाते हैं?

---

* १९२७-२८ से १९२९-३० तक के वर्षों में आये हुए विदेशी सूत का मूल्य ६७८ लाख, ६२८ लाख तथा ५९९ लाख रुपया था।

विश्वस्त आँकड़े प्राप्त नहीं हैं। इसलिए यह तो कहना कठिन है कि हाथ-कर्घे कितना विदेशी सूत काम में लाते हैं; परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि विदेश से आये हुए महीन सूत का काफी बड़ा भाग हाथ-कर्घों के काम में आता है, और इसका व्यवहार हाल के वर्षों में बढ़ा है। लुंगियाँ, मद्रासी रूमाल, रंगीन साड़ियाँ और अंगवस्त्रम, पगड़ियाँ और मलमलें बड़े परिमाण में ३८-४० से लेकर ११५-१२० तक के नंबर के विदेशी सूत से तैयार होती हैं, और हर साल अनुमान से ३५० लाख गज लुंगियाँ, और २० लाख गज मद्रासी रूमाल ही हाथ-कर्घों पर बुने जाते हैं। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि विदेश से आये हुए कुल सूत में से हाथ-कर्घों के काम में बहुत सूत नहीं आया क्योंकि हाथकर्घों ने १९२९-३० में मिलों का सूत लगभग ३००० लाख पाउण्ड काम में लिया और कुल विदेशी सूत तो लगभग ४२० लाख पाउण्ड ही आया था।

संयुक्त-राज्य, जापान, आदि से विदेशी सूत कितना-कितना सैकड़ा आता है।

२४. सूत और सूती धागा संयुक्त-राज्य, जापान, और चीन से १९१९-२० से लेकर १९२९-३० तक के वर्षों में कितना सैकड़ा आया, और उसके मुकाबले में १९१३-१४ में कितना आया था यह नीचे के नकशे में दिया गया है।

नक़शा सं० ४

सूत तथा सूती धागे की कुल आयात में संयुक्त-राज्य, जापान और चीन का कितना-कितना प्रतिशत भाग था—

देश	१९१३-१४	१९१९-२०	१९२०-२१	१९२१-२२	१९२२-२३	१९२३-२४
संयुक्त राज्य	८६	८१	४९	७०	५२	५९
जापान	२	१३	४२	२६	४५	४६
चीन (हांगकांग सहित)	—	—	—	—	—	—

देश	१९२४-२५	१९२५-२६	१९२६-२७	१९२७-२८	१९२८-२९	१९२९-३०
संयुक्त-राज्य	३७	३१	४१	३९	५३	४६
जापान	५७	६५	५४	३२	१७	२५
चीन (हांगकांग सहित)	—	—	२	२५	२६	२४

इस नक़शे से मालूम होता है कि संयुक्त-राज्य से आनेवाले माल का भाग कम हो रहा है और जापान का भाग बढ़ रहा है। पिछले तीन वर्षों में, जब कि विदेशी सूत पर १½ आना फी पौण्ड का विशेष कर लगाया गया है, मोटे सूत का आयात घट गया है, क्योंकि मोटा सूत तो कम कीमत वाला होता है इस पर यह कर बहुत भारी बैठता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस स्थिति को १९२८-२९ में जापान ने खो दिया था, उसे वह अब पुनः प्राप्त कर रहा है।

हाथ-कर्घों द्वारा चमकदार सूत और नकली रेशमी सूत का व्यवहार

२५. हाथ-कर्घों में चमकदार सूत और नकली रेशमी सूत के व्यवहार का प्रश्न भी विचार के योग्य है। १९२७-२८, १९२८-२९, और १९२९-३० में विदेश से आनेवाले नकली रेशमी सूत का परिमाण क्रमशः ७५ लाख पौण्ड, ७६ लाख पौण्ड और ७३ लाख पौण्ड था, और इसका मूल्य क्रमशः १४९ लाख रु०, १३५ लाख रु० और ९९ लाख रु० था। हम यह देख सकते हैं कि १९२८-२९ के मुकाबले में १९२९-३० में मूल्य काफी घट गया है परन्तु परिमाण प्रायः बराबर है। १९२७-२८, १९-२८-२९ और १९२९-३० में विदेश से चमकदार सूत क्रमशः ५३ लाख पौण्ड, ४० लाख पौण्ड और ५७ लाख पौण्ड आया,† और मूल्य क्रमशः १०९ लाख रु०, ८३ लाख रु०, १०८

---

† १९३० में चमकदार सूत के आयात में भी कमी हुई है। दिसम्बर १९३० को समाप्त होने वाले नौ महीनों में चमकदार सूत विदेश से २६ लाख पौण्ड आया। इसके मुकाबले में दिसम्बर १९२९ तक के नौ महीनों में ४६

लाख रु० था। इन अंकों से प्रकट होता है कि इन दोनों प्रकार के सूतों का आयात १९२९-३० तक बढ़ता रहा। इसमें से कितना-कितना सूत हाथ-कर्घों के व्यवसाय ने खपा लिया, यह अनुमान करना सरल नहीं है। परन्तु विदेश से माल मंगानेवाली कई कम्पनियों ने हाथ-बुनाई के केन्द्रों से सूचनाएँ प्राप्त करके कुछ काग़ज़ात तैयार किये हैं। उन काग़ज़ात से अनुमान किया जाता है कि चमकदार और नक़ली रेशमी सूत हाथ-कर्घों में ६० से लेकर ८० प्रतिशत तक खप जाता है। बम्बई की सूती मिलों के व्यवसाय से गहरा सम्पर्क रखने वाले एक अधिकारी की सम्मति है कि हाथ-कर्घों के व्यवसाय में बम्बई में आने वाले कुल चमकदार और नक़ली रेशमी सूत का ६०% और भारत में आने वाले इस प्रकार के कुल सूत का ८०% खप जाता है। बम्बई के कलेक्टर ऑव् कस्टम्स का खयाल है कि इन दोनों प्रकार के सूत की हाथ-कर्घों की खपत ९५ प्रतिशत है। सत्य बात

हाथ-कर्घों में लगभग ८०% खप जाता है—

लाख पौण्ड आया था। दिसम्बर १९३० को समाप्त होने वाले नौ महीनों में इसका मूल्य ३९ लाख रुपया, और दिसम्बर १९२९ में समाप्त होने वाले नौ महीनों में मूल्य ६० लाख था।

नक़ली रेशम के सूत के आयात में भी कमी हुई है। दिसम्बर १९२९ को समाप्त होने वाले नौ महीनों के मुक़ाबले में दिसम्बर १९३० को समाप्त होने वाले नौ महीनों में इसका परिमाण ५६ लाख पौण्ड से घट कर ४२ लाख पौण्ड हो गया, और मूल्य ७७ लाख रुपये से घट कर ५१ लाख रुपया रह गया।

यह है कि विदेश से आने वाले इस चमकदार सूत और नकली रेशमी सूत के परिमाण का बहुत बड़ा भाग हाथ-करघे महीन कपड़ा बनाने के काम में लाते हैं। इन सूतों का व्यवहार सब जगह बढ़ने का कारण यह है कि इस प्रकार के सूतों से कपड़ा आकर्षक और चमकदार बनाया जा सकता है।

परन्तु लोगों ने तो स्वदेशी चीज़ों को काम में लाने की प्रतिज्ञायें ली हैं। अब तो देश के वास्ते कपड़ा बनाने के लिए विदेशी सूत का जो व्यवहार होता है, निकट भविष्य में वह बिलकुल ही बन्द करना पड़ेगा। हाँ, ईरान, ईराक, पूर्वी अफ्रिका, और लाल-सागर के बन्दरगाह आदि अन्य देशों में भेजने के लिए यदि नकली रेशमी सूत, चमकदार सूत या विदेशी सूत काम में लाया जाय तो इसमें कोई बुराई नज़र नहीं आती।

इस प्रकार के सूत का व्यवहार छोड़ देना चाहिए—

२६. कुछ लोगों की राय है कि नकली रेशमी सूत का आना बन्द न करना चाहिए, क्योंकि ऐसा सूत भारतवर्ष में नहीं बन सकता, और इससे उन हाथ-बुनैयों को बड़ी हानि पहुँचेगी जो अपने कपड़े के लिए इसीको काम में लाने के अभ्यासी हैं। इतना कहना काफ़ी है कि भारतवर्ष में नकली रेशम के सूत या ऐसे सूत के कपड़े की ज़रूरत नहीं है। इसके सिवाय, यदि नकली रेशमी सूत या ऐसे सूत का कपड़ा या नकली रेशम और रुई का मिला हुआ कपड़ा देश में आने दिया जाय और उसपर रोक न लगाई जाय, तो

नकली रेशमी सूत और नकली रेशम का माल आना बन्द कर देना चाहिए—

इसकी आयात का परिमाण काफी बढ़ जायगा। आजकल तो विदेश से आनेवाले रुई के सूत और सूती कपड़े का खतरा है। फिर इस नक़ली रेशम के सूत और कपड़े का खतरा खड़ा हो जायगा॥ ऐसी प्रवृत्ति पिछले दो-तीन वर्षों से दिखाई दे रही है। १९२९-३० के वर्ष में सूती और नक़ली रेशम का कपड़ा विदेश से कुल ५६० लाख गज़ आया, जिसका मूल्य ३१५ लाख रु० था, और इसके मुकाबले में १९२८-२९ में ४९० लाख गज़ आया था जिसका मूल्य ३३० लाख रु० था। इस प्रकार एक ही वर्ष में ६० लाख गज़ कपड़ा अधिक आया। यहाँ यह भी जान लेना चाहिए कि नक़ली रेशम का और सूत का कपड़ा सबसे अधिक जापान से ही आया था। १९२९-३० के वर्ष में जापान से २५० लाख गज़ (या कुल आयात का लगभग ४४ प्र० श०) कपड़ा आया, जिसका मूल्य १४० लाख रु० था, इसके मुक़ाबले में १९२८-२९ के वर्ष में ३० लाख गज़ ही आया जिसका मूल्य ३० लाख रु० था। एक वर्ष के अर्से में ही जापान से आनेवाले माल का परिमाण २१० लाख गज़ बढ़ गया। विदेश से सूत और नक़ली रेशम के बने हुए कपड़े को मंगाने की प्रवृत्ति यदि बढ़ने दी गई और न रोकी गई, तो आन्तरिक साधनों द्वारा ही वस्त्र-स्वावलम्बी बनने में देश के लिए यह आगे एक नई बाधा खड़ी

॥ इस बात पर मैंने महात्मा गाँधीजी की राय ली। उन्होंने यह सम्मति दी—"नक़ली रेशमी सूत और कपड़ों का आयात बन्द करने-योग्य है।"

हो जायगी, इस कारण ऐसे कपड़े का आना तो एकदम ही रोक देना चाहिए। इस समय विदेश से आने वाले नकली रेशमी सूत पर मूल्य के अनुसार ७६ प्रतिशत, और नकली रेशमी सूत के तैयार कपड़ों पर मूल्य के अनुसार १५ प्र० श० कर है। मैं तो प्रस्ताव करूँगा कि यह कर इतना बढ़ा देना चाहिए कि इन चीजों का आना ही असम्भव हो जाय। मैं जनता से यह भी कहूँगा कि वह हाथ-कर्घों पर बुने हुए नक़ली रेशमी सूत के कपड़ों को काम में न ले, और नक़ली रेशम के बने हुए या नक़ली रेशम और रुई मिला कर बने हुए विदेश से आये हुए कपड़े को भी काम में न ले। सन् १९२९ के अप्रेल से दिसम्बर तक नौ महीनों में, पूरे नक़ली रेशम के और सूत और नक़ली रेशम मिश्रित कपड़े के थान २५० लाख गज आये थे। पर सन् १९३० में तो विदेशी माल के बहिष्कार के आन्दोलन ने सूती कपड़े की आयात में भारी कमी कर दी। इसके फलस्वरूप दिसम्बर १९२९ को समाप्त होने वाले नौ महीनों में जो सूती कपड़ा १३८०० लाख गज आया था, वह दिसम्बर १९३० को समाप्त होने वाले नौ महीनों में केवल ७१३० लाख गज ही आया। फिर भी, बिल्कुल नक़ली रेशम के या सूत और नक़ली रेशम मिश्रित कपड़ों के थान सन् १९३० के अप्रेल से दिसम्बर तक के नौ महीनों में इतने अधिक आये कि उनका अंक ३२० लाख गज तक पहुँच गया। सन् १९२९ के नौ मास के इस प्रकार के आये हुए कपड़े का मूल्य तो २८०

आयात कर बढ़ाया जाय

यदि नक़ली रेशमी सूत से हाथ-कर्घे पर कपड़ा तैयार किया जाय तो लोगों को उसका व्यवहार नहीं करना चाहिए—

लाख रु० था, परन्तु सन् १९३० के इन्हीं नौ मास में आये हुए कपड़े का मूल्य घट कर १४० लाख रु० रह गया।

हाथ-कर्घों में विदेशी सूत का व्यवहार छोड़ देने का तात्कालिक परिणाम

यह बहुत सम्भव है कि जो हाथ-बुनैये आजकल विदेशी सूत—सादा, चमकदार, रंगीन, या नक़ली रेशमी सूत—पर निर्भर रहते हैं और जिनका कपड़ा शुद्ध स्वदेशी नहीं कहला सकता उन्हें अपने माल के न विकने से ज़रूर कष्ट उठाना पड़ेगा। ऐसी गड़बड़ी यद्यपि अभीष्ट नहीं है पर वर्तमान परिस्थिति में अनिवार्य है, और मुझे आशा है कि यह स्थायी न रहेगी। जिन बुनैयों के कर्घे ४० नम्बर से ऊँचे सूत के योग्य हैं, वे यदि अपने कर्घों को एकदम मिलनेवाले हाथ-कते प्रायः मोटे सूत के योग्य नहीं बना सकते, तो उन्हें चाहिए कि वे कुछ कम महीन भारतीय मिलों के सूत को ही व्यवहार में लेने लगें। परन्तु जो बुनकर अपने कर्घों को ऐसा नहीं बना सकते कि उनमें ६० नम्बर से ऊँचे बारीक सूत के सिवाय और कोई सूत लग सके, उन्हें विदेशी सूत या विदेशी चमकदार सूत के बने अपने माल को बेचने के लिए विदेशों में बाज़ार बनाना होगा। पर जो बुनकर चर्खे से निकलने वाले हलके नम्बरों के सूत को अपने कर्घों में ले सकते हैं, उन्हें तो फ़ौरन ले लेना चाहिए। भविष्य में ऐसे सूत के बहुत मात्रा में मिलने में कुछ भी कठिनाई न होगी। ज्यों-ज्यों शहर के वे लोग जिन्होंने स्वेच्छा से अपने लिए सूत कातना शुरू किया है, कताई में अनुभव और दक्षता प्राप्त करते जायंगे, और ज्यों-ज्यों वे लोग जिन्होंने पिछले वर्षों में कातना त्याग दिया था, कातने के फिर अभ्यासी बनते जायंगे और अपनी परम्परागत कुशलता

को प्राप्त करते जायंगे, त्यों-त्यों उनका निकाला हुआ सूत एक-सा भी होने लगेगा और बलदार भी होगा, और जैसा आजकल शायद मोटा-पतला या कम बल का पाया जाता है, वैसा न रहेगा। सूत की क़िस्म तो बराबर सुधरती ही जा रही है। परन्तु यह बहुत सम्भव है कि हाथ-कर्घों को ऊँचे नम्बरों का, मिल-कता या हाथ-कता सूत इतना काफ़ी न मिल सके कि एकदम ही विदेशी सूत को हटा सकें। यह भी निश्चित ही है कि विदेशी सूत पर भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रतिषेध हो जाने के कारण हाथ-कर्घों को अपने कपड़ों में उसका लगाना अब लाभ-दायक न होगा। इसलिए भविष्य में हाथ-बुना कपड़ा कुछ मोटी क़िस्म का ही होगा। और लोगों का कर्तव्य है कि भले ही वह कपड़ा खुर-दरा, कम महीन, और कम चमकदार हो, तो भी इसे अपनावें। लोगों को अपनी रुचि पर कुछ नियंत्रण रखना होगा, और देश के अन्दर तैयार होने वाले मोटे या मध्यम सूत के कपड़े को ही अपनाना होगा।

भारतीय मिलों में बारीक नंबरों के सूत की उत्पत्ति

२८.—पिछले पृष्ठों (३८-३९) में एक नक़्शा दिया गया है जिसमें बताया गया है कि भारतीय मिलों में सूत की उत्पत्ति बढ़ रही है। नीचे के नक़्शे में यह बताया जाता है कि पिछले दस वर्षों में भारतीय मिलों में बारीक सूत कितना तैयार हुआ—

नकशा संख्या ५

भारतीय मिलों में बारीक सूत की उत्पत्ति

	३१ से लेकर ४० नंबर तक (लाख पौण्ड)	४० नं० से ऊँचा (लाख पौण्ड)
१९२०–२१	१५०	२०
१९२१–२२	१७०	२०
१९२२–२३	१६०	२०
१९२३–२४	२००	३०
१९२४–२५	१९०	६०
१९२५–२६	२००	६०
१९२६–२७	२८०	१२०
१९२७–२८	३४०	११०
१९२८–२९	३७०	१००
१९२९–३०	४६०	१५०
१९३०–(अप्रेल से सितंबर तक)	२९०	१२०

२९. इससे प्रकट होता है कि हमारी मिलों की बारीक सूत की उत्पत्ति बराबर बढ़ रही है, और यह वृद्धि आगे के वर्षों में और भी अधिक होगी। अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि क्या अभी हाल इतना सूत भारत में मिल सकेगा कि देश की कपड़े की आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। पीछे के एक नक़्शे (सं० १) में हम देख चुके हैं कि १९२७-२८ से प्रतिवर्ष अन्य देशों से लगभग १९०००

क्या हम इतना काफ़ी सूत पैदा कर सकते हैं कि कपड़े की माँग की पूर्ति हो सके ?

लाख गज़ तो सूती कपड़ा ही मंगा लेते हैं, इसके अतिरिक्त ४३५ लाख पौण्ड रुई का सूत, और १५ लाख पौण्ड नकली रेशम का और चमकदार रुई का सूत मंगा लेते हैं*। इसकी तुलना में, १९२९-३० के साल में भारतीय मिलों की सूत की उत्पत्ति ८३३० लाख पौण्ड थी। इसका अर्थ यह है कि भारत सूत के वास्ते अपनी उत्पत्ति के केवल ५ प्रतिशत परिमाण के लिए अन्य देशों पर निर्भर है। इस प्रकार सूत के विषय में स्वावलम्बी बनने में भारत को कोई कठिनाई नहीं है। विदेशों से जो सूत आता है उसमें प्रधानतः २६ से लेकर ४० तक के ऊँचे नंबरों का सूत होता है, और इसकी उत्पत्ति भी पिछले २ या ३ वर्षों में भारतीय मिलों में बढ़ी है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि भारत विदेशों को भी प्रतिवर्ष बहुत सूत भेजता है। सन् १९२६–२७, १९२७–२८, १९२८–२९ और १९२९–३० के वर्षों में भारत ने क्रमशः ४२० लाख पौ०, २५० लाख पौ०, २४० लाख पौ०, और २५० लाख पौ० सूत विदेशों को भेजा। यह सूत ईजिप्ट, उत्तरी अफ्रीका, लाल-सागर के बंदरगाहों, लंका और स्टेट्स सेटलमेण्ट, ईरान की खाड़ी आदि देशों को भेजा गया। अफ्रीका, ईजिप्ट, अमेरिका, आदि देशों से लम्बे रेशे की रुई मंगाने पर भारतवर्ष की मिलों को ऐसा सूत बनाने में कुछ भी कठिनाई न होगी जिससे विदेशी सूत छूट जाय। इससे भी यही

---

* दिसम्बर १९३० को समाप्त होनेवाले नौ महीनों में रुई का सूत केवल २१० लाख पौण्ड आया। इसके मुकाबले में १९२९ के इन्हीं नौ महीनों में ३३० लाख पौण्ड आया था।

बात यह है, कि मिलें बारीक सूत इतना अधिक भी बनाने लगेंगी कि जो कपड़ा आज बाहर से आता है वह भी देश में ही बन सके। कपड़ा बनाने के लिए भविष्य में जितने सूत की ज़रूरत होगी, उसमें से बहुतसा भाग चर्खों से कतेगा, और फ़िर किसी समय हाथ-कर्घों में काम आने वाला सूत प्रधानतः चर्खों से ही प्राप्त होगा, पर इस विषय को हम थोड़ी देर बाद लेंगे।

बारीक नम्बरों का सूत बनाने के लिए बाहर से लम्बे रेशे की रुई मंगाने का औचित्य

३०. आजकल इस बात पर बड़ा विवाद चल रहा है कि मिलों को कपड़ा तैयार करने के लिए विदेशी रुई मंगाने दी जाय या नहीं। कच्ची रुई बाहर से मंगाने के विरुद्ध दलीलें ये हैं—(१) विदेशी रुई से बना हुआ माल शुद्ध स्वदेशी नहीं कहला सकता, और (२) भारत की रुई की मांग कम हो जाती है और इससे उसका रुई का भाव गिर जाता है और इसका फल जाकर यह होता है कि किसानों को हानि पहुँचती है। ये दोनों ही दलीलें जँचने वाली नहीं हैं। प्रथम तो, विदेशी रुई (जो सब लंबे रेशे वाली होती है) के आने से भारतीय रुई (जिसका अधिकांश भाग मोटे सूत के ही योग्य होता है) की मांग में जितनी कमी होती है, वह बहुत थोड़ी है। भारतीय रुई का भाव घट जाने का कारण, भारतीय मांग का कम होना ही नहीं है, वल्कि कई संसार-व्यापी बातें भी हैं। सन् १९२८-२९ में विदेश से भारत में आनेवाली कच्ची रुई का परिमाण केवल १६२००० गांठ था, और १९२९-३० में १३४००० गांठ था, जिनकी क़ीमत क्रमशः ३९० लाख रु० और ३४२ लाख रु० थी।

और दिसम्बर १९३० को समाप्त होने वाले नौ महीनों में आयात ३३००० टन (लगभग २१०००० गांठ) थी, जिसका मूल्य केवल ४०५ लाख रु० था। १९२८-२९ और १९२९-३० में भारत से बाहर जानेवाली कच्ची रुई क्रमशः ६६ करोड़ मूल्य की ३७ लाख गांठ, और ६५ करोड़ मूल्य की ४० लाख गाँठ थी, और दिसम्बर १९३० को समाप्त होने वाले नौ महीनों में ३२ करोड़ मूल्य की ६६९५१ टन रुई बाहर भेजी गई। रुई के बाहर कम जाने का प्रधान कारण यह है कि संसार के रुई-सम्बन्धी उद्योग-धंधे मन्द पड़ गये हैं।

कच्ची रुई की उत्पत्ति, खपत, निर्यात और आयात

अब हमें यह देखना चाहिए कि १९२८-२९ और १९२९-३० के वर्षों में भारतीय कच्ची रुई भारतीय मिलों में कितनी खपी। इंडियन सेन्ट्रल कॉटन कमिटी के कथनानुसार १९२८-२९ में भारतीय मिलों में भारतीय रुई की खपत १७ लाख गाँठ (प्रत्येक गाँठ ४०० पौण्ड की) थी, और १९२९-३० में २२ लाख गाँठ थी। १९२८-२९ और १९२९-३० में भारतीय रुई क्रमशः ३७ लाख गाँठ और ४० लाख गाँठ बाहर गई। १९२८-२९ में भारत में रुई की कुल फसल ५७ लाख गाँठ हुई, और १९२९-३० की आनुमानिक फसल ५२ लाख गाँठ थी *। इससे मालूम

---

* यह अनुमान सरकारी है। रुई की फसल के गैरसरकारी अनुमान १९२८-२९ तथा १९२९-३० के क्रमशः ६० लाख और ६८ लाख गांठ के थे। (मेसर्स कुलीलाल मेहता एण्ड कम्पनी, बम्बई, का १९२९-३० की रुई की फसल का विवरण (रिपोर्ट) देखिए।)

होगा कि भारत की जितनी रुई भारतीय मिलों में खपती है उससे लगभग दुगनी रुई बाहर जाती है। इसलिए यदि भारतीय रुई की खपत थोड़ी-सी कम हो जाय, तो इससे उसके भाव में कोई मालूम होने योग्य कमी नहीं आ जायगी। यह तो ठीक है कि भारतीय मिलों को जहाँ तक हो सके भारतीय रुई ही काम में लेनी चाहिए, परन्तु यदि वे विदेश से आनेवाले महीन कपड़े को देश से निकाल देने के लिए लम्बे-रेशे वाली विदेशी रुई मंगाकर उस देश में ही वैसा कपड़ा बनाने लगें, तो इसमें कोई बुराई की बात नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्य देशों से कच्ची रुई मंगाने में तो कोई बुराई हो ही नहीं सकती। सच बात तो यह है कि देश चाहता है कि वह अब दुनिया को कच्चा माल न दे, बल्कि तैयार माल दे, और इसके लिए आवश्यक हो तो कच्चा माल अन्य देशों से मंगावे। हम विदेश से जो चीज़ मँगाते हैं वह कच्ची रुई होती है, न तो वह पूरा-तैयार माल कपड़ा है और न आधा-तैयार माल सूत है, और, यदि राष्ट्र का उद्देश्य—देश में ही आवश्यक कपड़ा तैयार कर लेना—पूर्ण करना है तो, विदेश से लम्बे रेशे की रुई की आयात को तबतक प्रोत्साहित करना चाहिए जबतक कि देश के भीतर ही लम्बे रेशे की रुई काफ़ी प्राप्त न होने लगे*। ताकि बाहर से आनेवाले महीन कपड़े को हटाने के लिए उसके

---

* ऊँचे नम्बर के सूत तैयार करने के लिए कितनी भारतीय रुई चाहिए, इस विषय में पेरा ४२ के नीचे का नोट देखिए। साधरणतः भारतीय रुई इस लायक़ नहीं है कि उससे ३० नंबर के ताने से अधिक तैयार हो सके।

मुकाबले के कपड़े का सूत तैयार हो सके। यदि हम इस दलील को मानें, कि, हमें विदेशी रुई नहीं मंगानी चाहिए, क्योंकि इससे भारतीय रुई की मांग घट जाती है और परिणाम-स्वरूप उसका भाव भी गिर जाता है, तब तो भारत को विदेशों की वस्त्र-विषयक पराधीनता से छुड़ाने का उद्देश्य देर में पूरा होगा, और इससे देश का बड़ा अपकार होगा। यदि यह कहा जाय कि सब लोग छोटे रेशेवाली भारतीय रुई के बने मोटे कपड़े का व्यवहार एक दम करने लगेंगे, तो कोई भी बुद्धिमान आदमी इसको नहीं मानेगा। इसलिए यह जरूरी है कि लोगों को स्वदेशी कपड़ा पहनने की आदत डलाई जाय (भले ही इसके लिए विदेशों से लंबे रेशे की रुई मंगानी पड़े), और जिस विदेशी कपड़े के पहनने का अभ्यास बहुत समय से उन्हें हो गया है, उसके अधिक-से-अधिक समान वह स्वदेशी कपड़ा बनाया जाय। कच्ची रुई की आयात बन्द करने की नीति अदूरदर्शिता-पूर्ण है। मैं आशा करता हूँ कि कोई भी जिम्मेदार व्यक्ति या संस्था इस नीति का समर्थन न करेगी, क्योंकि इससे देश के आन्तरिक साधनों से ही देश की आवश्यकता का वस्त्र बना लेने के उद्देश्य में बाधा पहुँचेगी †।

इस सम्बन्ध में यह भी जान लेना अच्छा होगा, कि भारत-सरकार ने ही ईजिप्ट और अमेरिका से आनेवाली रुई पर सन् १८९५ में ५ प्र. श. आयात कर लगाया था, ताकि भारत लंका-

† मैंने इस बारे में एक बार महात्मा गांधी की राय ली थी। उन्होंने कहा—"मेरी व्यक्तिगत राय है कि विदेशों से हम आवश्यक रुई ले सकते हैं।"

शायर के मुक़ाबले का बारीक सूत उस रुई से तैयार न कर सकें। (परिशिष्ट संख्या २ देखिए)। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हम अपनी जल्दबाज़ी और अविवेक के कारण कोई ऐसा काम न कर डालें जिससे हमारी प्रगति रुक जाय, और अन्य देशों को लाभ पहुँचे, और वे भारत को महीन कपड़ा देनेवाली अपनी स्थिति बनाये रक्खें।

इसमें सन्देह नहीं है कि ज्यों-ज्यों मिलें अधिक कपड़ा तैयार करने लगेंगी और ज्यों-ज्यों हाथ-कताई अधिक व्यापक होने लगेगी त्यों-त्यों भारत में भारतीय रुई की मांग बढ़ने लगेगी।

हाथ-करघों के माल का संरक्षण (१) विदेशी कपड़े पर निषेधात्मक कर द्वारा

३१. अब हम इस बात पर ध्यान देंगे कि किन तरीकों से हाथ-बुनैयों को सहायता मिल सकती है। वे अपने रिवाज को क़ायम रख सकें और भली-प्रकार जीवन-निर्वाह कर सकें, इसके लिए जब नवीन राष्ट्रीय सरकार बनेगी, और मुझे आशा है कि उसके बनने में अधिक देरी नहीं है, तब विदेश से आनेवाले कपड़े तथा सूत पर काफ़ी ऊँचा कर लगाया जाना कठिन न होगा। यदि आवश्यक हो तो विदेश से आने वाले कपड़े पर और सूत पर अस्थायी समय के लिए निषेधात्मक कर भी लगाया जा सकता है, ताकि विदेशी कपड़ा और सूत बिलकुल निकाला जा सके, और वस्त्र-सम्बन्धी अपनी आवश्यकता के मामले में भारत अन्य उन्नत देशों से सफलता-पूर्वक मुक़ाबला कर सके। ऐसा कर लगाने से इस बात का पक्का प्रबंध हो जायगा कि भारत की वस्त्र-सम्बन्धी आवश्यकताएँ भारत में ही पूरी हो जायँ। इतना हो जाने पर दूसरा काम यह किया जायगा

कि मिलों के बाबत एक उचित क़ानून बनाया जायगा, जिससे औसतन १२ नम्बर से नीचे सूत का कपड़ा बनाना मिलों के लिए निषिद्ध कर दिया जायगा। हाँ, वे ट्विल, कम्बल (Blankets) स्टीम प्रेशर से इसतरी किया हुआ कपड़ा (Calendered Cloth), और डोबी (पिंजरा) बुनाई, जैकर्ड बुनाई, आदि क़िस्म के कपड़े बना सकेंगी। इस प्रकार का क़ानून बनाने से इस बात का पक्का प्रबन्ध हो जायगा कि हाथ-कर्घों के माल की बिक्री के लिए अलग बाजार बन जाय। इस प्रकार कुछ विशेष प्रकार का कपड़ा हाथ-कर्घे ही बना सकेंगे और इसमें उन्हें देश के मशीन-बने माल से प्रतियोगिता न करनी पड़ेगी। यदि भारतीय मिलों और हाथ-कर्घों में, फिर भी कुछ क़िस्म के कपड़े के बारे में प्रतियोगिता रही, तो आजकल की भांति फिर भी सदा ऐसे लोग तो रहेंगे ही जो मशीन-बने कपड़े की अपेक्षा देश ही हाथ-कर्घे के कपड़े के लिए अधिक दाम देना बुरा न समझेंगे।

(२) मिल-वस्त्र की प्रतियोगिता हटाकर

यह तो शुद्ध आर्थिक विचार हुआ। परन्तु बहुत से लोग ऐसी भावना भी रख सकते हैं कि यह रुपया हमारे कंगाल गरीब भाइयों के पास जाता है, इससे वे भूख और मोहताजी से बच सकेंगे, इससे उन बहुत से लोगों को रोज़गार मिलेगा जो फालतू वक़्त में कताई और बुनाई कर सकते हैं। यहां तो हाथ-बुनैयों का भी सहारा है और कृषकों का भी। यही सब से अच्छा सहायक-धन्धा हो सकता है। यदि सहायक-धन्धे के रूप में इसका व्यापक प्रचार हो जाय, तो इससे भी ग्राम की धन-सम्पत्ति बहुत कुछ बढ़ सकती है।

देश में खद्दर का व्यवहार बढ़ाने का एक और भी तरीक़ा है। सच्ची राष्ट्रीय सरकार तो हृदय से जनता का कल्याण चाहेगी। यदि वह सरकारी वर्दियों और अपनी अनेक वस्त्र-सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिए केवल खद्दर को ही काम में लावे, और रेलवे पोर्ट, ट्रस्ट, अदालतों, म्युनिसिपैलिटियों, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, लोकलबोर्ड आदि अन्य सार्वजनिक संस्थाओं से भी खद्दर का ही व्यवहार करावे तो वह हाथ-बुनाई को बड़ा उत्तेजन दे सकेगी। यह भी क़ानून बनाया जा सकता है कि केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका-सभाओं के मेम्बर अधिवेशनों में खद्दर पहन कर ही आया करें। फिर तो, जो काम बड़े लोग करेंगे छोटे भी उसकी प्रशंसा और उसका अनुकरण करेंगे। खद्दर पहनने का रिवाज शिक्षण-संस्थाओं व अन्य संस्थाओं में भी जा पहुँचेगा, और शरीफ़-लोगों में खद्दर पहनना आसानी से फैशन बन जायगा। इसके बाद तो विदेशी वस्त्र की बुराई पूर्णतः हटाई जा सकेगी। इस बीच, प्रत्येक खद्दरधारी को प्रचारक बन जाना पड़ेगा, और राष्ट्रीय रुचि में क्रान्ति पैदा करने के काम में सहायता देनी होगी।

(३) सरकारी और अर्ध-सरकारी संस्थाओं में खद्दर का व्यवहार क़ानूनन जारी करा कर

खद्दर पहनना फैशन बन जायगा

३२. अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि आजकल हाथ-कर्घे के बुनकरों को कपड़ा बनाने और बेचने में क्या-क्या कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं।

आजकल हाथ-बुनैयों की कठिनाइयाँ

भारत के हाथ-बुनैयों के तीन वर्ग या विभाग हो सकते हैं।

हाथ-बुनैयों का वर्गीकरण

(१) वे स्वतंत्र बुनकर जो घर पर ही काम करते हैं और जिनके पास सूत खरीदने के लिए पूंजी का काफी इन्तजाम है। (२) वे पराधीन बुनकर जो सूत-व्यापारियों और ऋण-दाताओं के सदा ही कर्जदार रहते हैं। और, (३) वे ठेकेदार लोग, जिनके पास दस-दस या बारह-बारह अन्य बुनकर होते हैं जो उनकी देख-रेख में काम करते हैं।

पराधीन बुनकरों की संख्या ही सब से अधिक है। स्वतंत्र बुनकर अनुमानतः २० प्रतिशत, और ठेकेदार लगभग ५ प्रतिशत हैं।

उनकी असंगठित अवस्था

बुनकर लोगों में संगठन नहीं है, और फुटकर सूत बेचने वाले बिचवैये लोगों की संख्या बहुत है और वे बड़ा-बड़ा मुनाफा उठाते हैं। इन कारणों से हाथ-करघों का कपड़ा मिल के कपड़े से महंगा पड़ता है। हाथ-बुनकरों का बुनाई का तरीका भी प्रारम्भिक अवस्था का है। इससे भी उनका कपड़ा कुछ अधिक महंगा होता है। जब फ्लाई-शटल करघे साधारणतः प्रचलित हो जायंगे, तभी उनका काम ज्यादा अच्छा हो सकता है और मुनाफा बढ़ सकता है, और साथ ही उत्पत्ति का खर्चा भी कम पड़ सकता है। यह जानकर बड़ा खेद होता है कि सन १९२३ में पंजाब में कुल १७६३४० चालू करघों में से फ्लाई-शटल करघे केवल २९,४८ थे, और पुराने ढंग के करघे १७२८९५ थे।* धीरे-धीरे, काम

* "पंजाब इंडस्ट्रियल मोनोग्राफ नं० १" देखिए।

करने वाले बुनकर भी नुकसान में रहते हैं, क्योंकि वे अपने व्यवसाय के संमिश्रित कार्य करते हैं पर श्रम-विभाग के लाभ को नहीं मानते। बुनकरों की दशा सुधरने के लिए यह परमावश्यक है कि उन्हें बाहरी मदद लेने के लिए राजी किया जाय, और यह मदद सहयोग-समितियों की स्थापना से दी जा सकती है। ये सहयोग-समितियाँ बुनकरों को ठीक दाम पर सूत दें और उनका तैयार कपड़ा ले लें।

हाथ-कर्घों के बुनकर या तो सूती कपड़ा बनाते हैं, या रेशमी कपड़ा या ऊनी कपड़ा। औसत कारीगर ८ आना से लेकर १।) रु० तक रोज़ कमा लेते हैं। रेशम बुनने वाले कारीगरों की मज़दूरी सब से ज्यादा और सूती कपड़ा बुननेवालों की कमाई सब से कम होती है। प्रायः प्रत्येक प्रान्त में, विशेषतः बड़े-बड़े शहरों के केन्द्रों में, कुछ बुनकरों का जीवन-निर्वाह केवल हाथ-कर्घों की बुनाई से होता है। परन्तु उनकी औसत मासिक आमदनी लगभग १५ रु० ही समझनी चाहिए। महीन कपड़ा बुनने वाले मोटा कपड़ा बुननेवालों से स्वभावतः ज्यादा मज़दूरी माँगते हैं। हाथ-कर्घे के व्यवसाय से आजकल, लगभग २० या ३० लाख बुनकरों को रोज़ी मिलती है और वे लगभग ८० या १०० लाख व्यक्तियों का पालन करते हैं।† आजकल बुनकरों की

बुनकरों की वर्त्तमान अवस्था

हालत संतोषजनक नहीं है, क्योंकि बुनकरों की मेहनत से बीचवाले लोग ही ज्यादा मुनाफा उठाते हैं। नीचे यही बात बताते हैं।

† 'यंग इंडिया' ता० १ अक्टूबर १९२६, देखिए।

२३. हाथ-करघों के बुनकरों के वर्तमान संगठन में मुख्य-मुख्य ख़ामियाँ निम्नलिखित हैं—

बुनकरों के संगठन की कमियां

(क) उन्हें सूत के ऊँचे दाम पड़ते हैं ‡। (ख) उन्हें अपना तैयार माल मजबूरन बेचना पड़ता है और बेचने की सुविधाएँ भी उनके पास नहीं हैं। इसलिए बुने हुए कपड़े के दाम कम मिलते हैं।

(ग) उन्हें अपने काम के लिए पूंजी ऊँचे ब्याज से मिलती है, और आवश्यकता के लिए अपूर्ण मिलती है।

कई प्रांतों की बैंकिंग एनकायरी कमेटियों ने हाल में ही अपनी-अपनी रिपोर्टें पेश की हैं। उनमें से विशेषतः बम्बई प्रांतीय बैंकिंग एनकायरी कमेटी के कई प्रस्ताव बड़े अच्छे हैं। उन प्रस्तावों में कहा गया है कि साहूकार लोग बुनकरों से इतना ऊँचा ब्याज लेते हैं कि बुनकरों को कुछ भी मुनाफ़ा नहीं बचता। इसलिए ऐसे ऋणदाताओं से गरीब हाथ-बुनकरों को बचाने की बड़ी भारी ज़रूरत है। इसके साथ ही बुनकरों को सस्ते भाव से सूत × नियम से मिलने, और बुनकरों के बने हुए कपड़ों

‡ यहाँ तात्पर्य मिल-कते सूत से है। इसका अर्थ साफ़ तौर से कहना है कि बुनकर को बीच वाले (व्यापारी) से नहीं बल्कि अपने साथी किसान से सूत लेना चाहिए।

× बुनकर कभी-कभी सूत नकद भी खरीद लेते हैं, परन्तु अधिकतर उधार लेते हैं। इस अवस्था में बीच वाले आ पड़ते हैं। (देखिए, पी० एन० मेहता—हाथ करघों की बुनाई और आसपास के औद्योगिक विकास सम्बन्धी रिपोर्ट—डॉ० आर० नाटेसन एम०)

को ठीक भाव पर बेचने के लिए भी बड़े अच्छे संघटन की ज़रूरत है। जब तक ऐसा प्रबन्ध नहीं होता, तब तक तो बीच के लोग और ऋणदाता लोग ही सारा मुनाफ़ा खा जाया करेंगे, और बुनकरों की हालत कभी संतोषजनक न होगी। इन प्रश्नों को वे अधिकारी ही सब से अच्छी तरह सुलझा सकते हैं जो सरकारी औद्योगिक, सहयोग-समित आदि विभागों के अधिष्ठाता हैं और जो उन बुनकरों को सस्ते ब्याज से पूँजी आदि दिला सकते हैं।

३४. हाथ-करघों के बुनैयों के प्रबन्ध को सुधारने के लिए निम्नलिखित प्रस्ताव विचारणीय हैं—

हाथ-बुनैयों की दशा सुधारने के लिए प्रस्ताव

(१) हाथ-करघों में यान्त्रिक सुधार करने तथा बने हुए माल की क़िस्म सुधारने और काम करने वालों की कार्य-योग्यता बढ़ाने के लिए प्रदर्शन-गृह क़ायम करने चाहिए।

(२) आज-कल जो बीच वालों से सूत ख़रीदा जाता है और दाम अधिक लगते हैं, इसको कम करने के लिए एक केन्द्रीय सूत ख़रीदने वाली एजेन्सी क़ायम की जाय। गांव के किसानों का हाथ-कता सूत तो हाथ-बुनकर स्वयं ख़रीद सकेंगे।

(३) हाथ-बुनैयों का कपड़ा जनता के सामने उपस्थित करने के लिए विक्रय-गृह बनाये जायं।

(४) उनका कपड़ा प्रदर्शित करने के लिए नुमायशें कराई जायं।

(५) हाथ-करघों का कपड़ा अपनाने के लिए और हाथ-

बुने कपड़े के टिकाऊपन की ओर जनता का ध्यान दिलाने के लिए प्रचार किया जाय।

(६) हाथ-बुनकरों को शिक्षित करने के लिए औद्योगिक और यान्त्रिक शिक्षा-संस्थाएं क़ायम की जायं।

(७) माल लाने, ले जाने के खर्च में कमी की जाय।

(८) हाथ-बुने कपड़े का व्यवहार बढ़ाने के लिए बड़े क़स्बों में म्यूनिसिपैलिटियाँ उस पर कर उठा दें।

(९) हाथ-बुने कपड़े का व्यवहार बढ़ाने के लिए यह विधान बना दिया जाय कि जो कोई व्यक्ति एसेम्बली, कौन्सिलों, म्यूनीसिपैलिटियों आदि के अधिवेशनों में उपस्थित होने आवें, वह हाथ बुना कपड़ा ही पहन कर आवें।

(१०) विदेशी वस्त्र और विदेशी सूत पर मुनासिब संरक्षणात्मक आयात कर लगाया जावे।

(११) जैसा कपड़ा हाथ-कर्घों द्वारा ही विशेषतः बनता है उस प्रकार का कपड़ा बनाना मिलों के लिए निषिद्ध कर दिया जाय, और इस प्रकार मिल के माल की प्रतियोगिता हटा दी जाय।

३५. सन् १९१६ में औद्योगिक कमीशन ने लिखा था कि पिछले ४० वर्षों में भारत के हाथ-बुनैयों की संख्या प्रायः एक-सी ही रही है। परन्तु प्रतियोगिता के दबाव के कारण वे पहले की अपेक्षा अब फ़िनिश किया हुआ माल ज्यादा निकालते हैं। कमीशन लिखता है कि ऐसा ख्याल किया जाता है कि हिन्दुस्थान में २० लाख से लेकर ३० लाख तक कर्घे चल रहे हैं। हाथ-कर्घों के बारे में १९२१ की मर्दुम-शुमारी की रिपोर्ट कहती है—

हाथ-कर्घों की गणना

"सारे भारतवर्ष में कितने हाथ-कर्घे हैं, इसकी गणना करना संभव नहीं समझा गया। और न यह संभव था कि देश में या विविध प्रान्तों में कितने हाथ-बुनकर हैं इसका अनुमान लगाया जाय।"

यह यहाँ बता देना चाहिए कि कताई की तरह बुनाई कोई सहायक धन्धा तो नहीं है, फिर भी कपड़ा बुनने वाले लोग कर्घों पर ही अपना पूरा समय नहीं देते।

सारे भारतवर्ष में कितने-कितने हाथ-कर्घे कहाँ-कहाँ हैं, यह नीचे के नक़्शे में बताया गया है। (इस नक़्शे में मध्यप्रान्त, युक्तप्रान्त और बरार के आँकड़े शामिल नहीं हैं)

नक़्शा सं० ६

भारत के प्रान्तों में कितने-कितने हाथ-कर्घे हैं ?

प्रांत	कर्घों की संख्या
१. अजमेर.	१५८७
२. आसाम	४२१,३६७
३. बंगाल	२१३८८६
४. बिहार-उड़ीसा	१६४५९२
५. बर्मा	४७९१३७
६. दिल्ली	१६६७
७. मद्रास	१६९४०३
८. पंजाब	२७०५०७
९. बड़ौदा	१०८५७
१ . हैदराबाद	११५४३४
११. राजपूताना	८९७४१
योग	१९३८१७८

मर्दुमशुमारी में बुनकरों की संख्या जितनी लिखी हुई है, उससे तो यह ठीक-ठीक ज्ञात नहीं होता कि हाथ-बुनाई का उद्योग उन्नति की ओर जा रहा है या अवनति की ओर। फिर भी यह दिखाई देता है कि हाथ-कर्घों की उत्पत्ति वृद्धि की ओर है, और जैसा पीछे एक जगह कहा गया है कि इस धंधे से ८० या १०० लाख आदमियों का पालन होता है, यह अत्युक्ति नहीं है।

हाथ-कते सूत के बारे में पूरे और सच्चे आंकड़े होने की आवश्यकता

ऊपर दिये हुए नक़शा सं० १ से मालूम हो सकता है कि पिछले सालों में हाथ-कर्घों में मिल के सूत की खपत बढ़ रही है। विशेषतः अप्रैल १९३० से, जब से कि विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का आन्दोलन जोरों से चल रहा है, बेकार पड़े हुए बहुत से कर्घे फिर से चलने लगे और नये कर्घे भी खड़े किये गये हैं। पहले एक जगह कह ही चुके हैं, कि हाथ-कर्घे कितना हाथ-कता सूत ले लेते हैं इसके ठीक-ठीक आँकड़े नहीं मिलते। इसकी मात्रा भी बढ़ी ही होगी। इसलिए इसमें सन्देह नहीं है कि कुछ वर्ष पहले की अपेक्षा अब तो बहुत अधिक मनुष्य हाथ-कर्घे के उद्योग से जीवन-निर्वाह करते होंगे।

३६. पिछले कुछ वर्षों में किस-किस देश से कितना-कितना हिस्सा कपड़ा आया यह जान लेना भी अच्छा होगा। १९२९-३० के वर्ष में भिन्न-भिन्न देशों से हमने १९००० लाख गज़ कपड़ा मँगाया। इस कपड़े में से लगभग ६५ प्रतिशत संयुक्त राज्य से आया, २९ प्रतिशत जापान से आया, और बाक़ी कपड़ा संसार के दूसरे देशों से आया।

पिछले चार वर्षों में कुल जितना थान कपड़ा विदेशों से आया, उसमें मुख्य-मुख्य प्रतिद्वन्द्वी देशों ने कितने-कितने प्रतिशत भाग भेजा, यह नीचे का नक़शा बतायगा। युद्ध-पूर्व समय (१९१३–१४) से तुलना करने के लिए, उस समय के अङ्क भी दिये गये हैं।

भिन्न-भिन्न देशों से कितना-कितना प्रतिशत कपड़ा आता है, इसके आंकड़े

नक़शा सं० ७

विदेश से आने वाले कपड़े में प्रधान-प्रधान देशों से आया हुआ भाग कितना था ?

भेजने वाले देश	१९१३-१४	१९२६-२७	१९२७-२८	१९२८-२९	१९२९-३०
	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत
संयुक्त राज्य (ब्रिटेन)	९७·१	८२·०	७८·२	७५·२	६५·५
जापान	·२	१२·६	१६·४	१८·४	२९·८
संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका	·३	·९	१·४	१·५	·५
नेदरलेण्ड्स	·८	१·१	१·०	१·०	१·१
अन्य देश	१·५	२·४	२·०	२·९	३·१
योग	१००·०	१००·०	१००·०	१००·०	१००·०

३७. साधारणतया विदेशी कपड़े, और विशेषतया ब्रिटिश कपड़े के बहिष्कार का आंन्दोलन तो आजकल चल ही रहा है, इसलिए इस बात का अध्ययन कर लेना चाहिए कि पिछले कुछ वर्षों में विदेशों से कुल कपड़ा कितना आया, और ठीक-ठीक संयुक्त-राज्य और जापान इन दो प्रधान देशों से कितना-कितना आया। नीचे के नक़्शे में १९१९-२० से लेकर १९२९-३० तक के वर्षों के इस विषय के आंकड़े दिये गये हैं। इससे ज्ञात होगा कि १९२९-३० में संयुक्त-राज्य से आने वाले कपड़े का परिमाण १९२०-२१ के परिमाण से भी कम था, परन्तु १९२९-३० का, जापान से आने-वाले कपड़े का परिमाण १९२०-२१ की अपेक्षा तिगुना हो गया।

संयुक्त-राज्य, जापान आदि से सन् १९२९-३० में ठीक कपड़ा कितना आया इसके आंकड़े

नक्शा सं० ८

१९१९-२० से विदेशों से कुल कपड़ा कितना आया, तथा संयुक्त राज्य (ग्रेट ब्रिटेन) और जापान से कितना-कितना आया ?

सन्	(पुनः निर्यात किया हुआ परिमाण घटा कर) ठीक-ठीक कपड़ा बाहर से कितना आया	संयुक्त राज्य (ब्रिटेन) से कुल कितना आया	जापान से कुल कितना आया
	(लाख गज़)	(लाख गज़)	(लाख गज़)
१९१९-२०	८२६०	९७६०	७६०
१९२०-२१	१४०५०	१२९२०	१७००
१९२१-२२	९८००	९५५०	९००
१९२२-२३	१४६७०	१४५३०	१०८०
१९२३-२४	१३७४०	१३१९०	१२३०
१९२४-२५	१७१००	१६१४०	१५५०
१९२५-२६	१५२९०	१२८७०	२१७०
१९२६-२७	१७५८०	१४६७०	२४४०
१९२७-२८	१९४००	१५४३०	३२३०
१९२८-२९	१९१२०	१४५७०	३५७०
१९२९-३०	१८९७०	१२४५०	५६००
१९३० (अप्रैल से दिसम्बर तक)	७०३०	४४००	२२२०

दिसम्बर १९३० तक समाप्त होने वाले नौ महीनों में कुल कपड़ा ७१३० लाख गज़ ही आ पाया, जब कि १९२९ के इन्हीं नौ महीनों में १३७९० लाख गज़ आया था। १९३० के इन नौ महीनों में संयुक्त-राज्य (ब्रिटेन) से ४४०० लाख गज़ ही आ पाया, और इसकी तुलना में १९२९ के इन्हीं नौ महीनों में ८९१० लाख गज़ आया था (५०% से अधिक घटा)। इसी काल में जापान से आनेवाला कपड़ा घटकर २३२० लाख गज़ ही रह गया, जब कि दिसम्बर १९२९ को समाप्त होनेवाले नौ महीनों में वहां से ४०४० लाख गज़ आया था। इससे प्रकट होता है कि विदेशी कपड़े के वहिष्कार का आन्दोलन सफल रहा, और ब्रिटेन से आनेवाले कपड़े का परिमाण तो आधे से भी अधिक घट गया, इसलिए विशेषतः इस देश के मामले में तो सफल रहा। यह बहुत संभव है कि आगामी महीनों में ब्रिटेन से आनेवाले कपड़े के परिमाण में और भी कमी होगी। यहां यह ठीक-ठीक अलग-अलग बताना तो संभव नहीं है कि वहिष्कार का प्रभाव कितना हुआ, १९३० में विदेशी वस्त्र पर बढ़ाये हुए कर का असर कितना हुआ, और व्यापार की मन्दी का प्रभाव कितना हुआ, पर यह मान सकते हैं कि जुलाई १९३० के बाद आयात की कमी अधिकतर वहिष्कार के फलस्वरूप हुई। हाल में बम्बई मिल-मालिक संघ ने कहा था, कि जुलाई से नवम्बर तक आयात में जितनी कमी हुई उसकी ८० प्रतिशत, वहिष्कार—आन्दोलन के कारण कही जा सकती है।

बहिष्कार-आन्दोलन की सफलता

३८. ऊपर के नक़्शों में जो आँकड़े दिये गये हैं वे परिमाण-

सम्बन्धी ही हैं। यह भी जान लेना बहुत उपयोगी होगा कि विदेश से आने वाले (पुनः निर्यात का परिमाण घटाकर) सूत व कपड़े, तथा कच्ची और तैयार रुई का मूल्य कितना था। मूल्य-सम्बन्धी ये आँकड़े आगे के नक़शे में दिये गये हैं। तुलना के लिए इस नक़शे में यह भी दे दिया गया है कि १९१९-२० के बाद के वर्षों में ब्रिटेन और जापान से आने वाले सूत और कपड़े का मूल्य कितना-कितना था। नक़शे से यह स्पष्ट हो जायगा कि आज-कल कुल विदेशी कपड़ा जितने मूल्य का आता है, उसमें से संयुक्त-राज्य के कपड़े का मूल्य लगभग ६६ प्रतिशत है, और जापान के कपड़े का मूल्य लगभग २५ प्रतिशत है। तथा आजकल रुई का कुल विदेशी सूत जितने मूल्य का आता है, उसमें से ब्रिटेन के सूत का मूल्य लगभग ४० प्रतिशत और जापान के सूत का मूल्य लगभग २७ प्रतिशत है। नक़शा यह भी बताता है कि १९२९-३० तक पिछले छः वर्षों में ब्रिटेन से आने वाले सूत और कपड़े का मूल्य निरन्तर घट रहा है और जापान से आने वाले सूत और कपड़े का मूल्य बढ़ रहा है। भविष्य के वर्षों में मूल्य ज़रूर ही घटेगा।

पिछले २० वर्षों में विदेशों से आने वाले सूत और कपड़े के मूल्य (रुपयों में) सम्बन्धी आंकड़े

नक़शा सं० ६

१६०८-०६ से लेकर १६२६-३० तक कितने मूल्य का सूत व सूती कपड़ा, तथा कच्ची व तैयार रुई विदेश से आई ?

१९०८—९ से लेकर १९२९-३० तक कितने मूल्य का सूत व सूती कपड़ा, तथा कच्ची व तैयार रुई विदेश से आई और ब्रिटेन और जापान, इन दो देशों से कितने-कितने मूल्य का सूत और सूती कपड़ा आया।

(मूल्य लाख रुपयों में)

सन्	(पुनः निर्यात का मूल्य घटा कर) कुल आये हुए कपड़े का ठीक मूल्य	संयुक्त राज्य (ब्रिटेन) से आये हुए कपड़े का मूल्य	जापान से आये हुए कपड़े का मूल्य	बाहर से आये हुए रुई के सूत का कुल मूल्य	संयुक्त-राज्य (ब्रिटेन) से आये हुए रुई के सूत का कुल मूल्य	जापान से आये हुए रुई के सूत का मूल्य	बाहर से आने वाली कच्ची व तैयार कुल रुई का मूल्य
१	२	३	४	५	६	७	८
१९०८—०९	३१२०	...	...	३६०	...	...	३८५०
१९०९—१०	३२८०	...	...	३३०	...	...	३९७०
१९१०—११	२७५०	...	...	३००	...	...	४५००
१९११—१२	४११०	...	...	३७०	...	...	५९१०
१९१२—१३	५१७०	...	...	४४०	...	...	६३००
१९१३—१४	५६७०	...	...	४१०	...	...	६६५०
१९१४—१५	४२१०	...	...	३८०	...	...	४९२०
१९१५—१६	३५३०	...	...	३६०	...	...	४३३०
१९१६—१७	४३१०	...	...	४००	...	...	५१६०

१९१७—१८	४६४०	...	...	४२०	...	...	५६९०
१९१८—१९	४४८०	...	...	८८०	...	...	६१७०
१९१९—२०	४७८०	...	...	४३०	...	...	५९७०
१९२०—२१	८०२०	७०८०	८३०	१३५०	७९०	३८०	१०३८०
१९२१—२२	३९५०	३७३०	३६०	११५०	८७०	२२०	६०३०
१९२२—२३	५५२०	५२२०	४२०	९२०	५६०	३२०	७१८०
१९२३—२४	५४३०	४९३०	४६०	७९०	४६०	२८०	६९९०
१९२४—२५	६७००	६०२०	५७०	९६०	४५०	४५०	८६५०
१९२५—२६	५३००	४४५०	६८०	७७०	३१०	४२०	६९३०
१९२६—२७	५३९०	४४७०	६५०	६६०	३००	३२०	७०००
१९२७—२८	५३९०	४२७०	८२०	६७०	३००	२२०	७१९०
१९२८—२९	५३१०	४०४०	८८०	६२०	३५०	१२०	६७१०
१९२९—३०	४९५०	३३६०	१२६०	५९०	२९०	१६०	६२९०
१९३० (अप्रैल से दिसम्बर तक)	१६१०	१०७०	४४०	२३०	९०	६०	२४६०

नोट—सन् १९१८-१९१९ तक के आँकड़े पाउण्डों में प्रकाशित हुए हैं। इस नक़शे में १५ रुपये का एक पाउण्ड, इस दर से आँकड़े दिये हैं। १९१९-२० के अंक भी किसी सरकारी पुस्तक में रुपयों में नहीं थे। ये भी १० रुपये का एक पाउण्ड, इस दर से निकाले गये हैं। (पाउण्डों को रुपयों में बदलने की दर डिपार्टमेण्ट ऑव् कमर्शल इन्टेलिजेन्स एण्ड स्टेटिस्टिक्स, कलकत्ता से दर्याफ्त करके जानी गई है)। तुलना की सुविधा के लिए आँकड़े रुपयों में कर दिये गये हैं। अभी तक किसी सरकारी या अन्य पुस्तक में ये आँकड़े रुपयों के रूप में नहीं मिलते थे।

१९३० के दिसंवर को समाप्त होने वाले नौ महीनों में सूती कपड़ा कुल १६ करोड़ रुपयों का ही आया, और इसके मुक़ावले १९२९ के इन्हीं नौ महीनों में ३७ करोड़ रुपये का कपड़ा आया था।

३९. यह देखकर कि हम कपड़े के मामले में विदेशों पर इतने निर्भर रहते हैं, स्वाभाविक रूप से प्रत्येक व्यक्ति के मन में प्रश्न यह उठता है कि भारतवर्ष कपड़े की अपनी आवश्यकता की स्वयं पूर्ति लायक़ वनाया जा सकता है या नहीं, और हम देश के अन्दर ही आवश्यक वस्त्र वनाकर वहुत से लोगों को रोज़गार दे सकते हैं या नहीं, और वाहर जाने वाला करोड़ों रुपया देश में वचा सकते हैं या नहीं। १९२८–२९ में कुल कपड़ा ५३ करोड़ का और १९२९-३० में ५० करोड़ का आया, तथा सूत १९२८-२९ में ६ करोड़ का और १९२९ में भी ६ करोड़ का आया। हमें विचार कर लेना चाहिए कि क्या हम इस स्थिति में हैं कि हम आयात को वंद कर सकें, और भारतवर्ष को इस लायक़ वना सकें कि वह अपने आन्तरिक साधनों से ही अपने लायक़ कपड़ा वना ले?

क्या भारतवर्ष कपड़े की स्वयं-पूर्ति करने लायक़ वनाया जा सकता है?

४०. पिछले एक पैरा में हम यह देख चुके हैं कि कताई की मिलों और चर्खों की सहायता से आवश्यक वस्त्र वनाने लायक़ सूत तैयार कर लेना भारतवर्ष के लिए कठिन नहीं है। यह काम कैसे किया जा सकता है, इस पर अव हम विचार करेंगे, और कुछ वास्तविक प्रस्ताव भी रक्खेंगे।

कातनेवाली मिलों और चर्खों की सहायता

सन् १९२७-२८ से १९२९-३० तक के वर्षों में औसतन १९००० लाख गज़ सूती कपड़ा, और ४५० लाख पाउण्ड रुई का सूत विदेश से आया। १९२९-३० के वर्ष में मिलों ने ८३३० लाख पाउण्ड सूत तैयार किया। मिलों के कर्घों पर कपड़ा बनाने में ५०१० लाख पाउण्ड सूत खप गया। हाथ-कर्घों के व्यवसाय के लिए ३५१० लाख पाउण्ड सूत मिल सका और २५० लाख पाउण्ड अन्य देशों को भेजा गया। भारतीय मिलों और हाथ-कर्घों ने मिलकर १९२९-३० में देश की आवश्यकता का ६५ प्रतिशत कपड़ा दिया, और इसके अलावा अन्य देशों को भी लगभग १३३० लाख गज़ भेज दिया। १९२९-३० में बाहर से आवश्यकता का सिर्फ़ ३५ प्रतिशत, (अर्थात् १९००० लाख गज़) कपड़ा आया; और सिर्फ़ ५ प्रतिशत (लगभग ४५० लाख पाउण्ड) सूत आया। अब मिल में कपड़ा बनाते समय सूत ख़राब जाने से वज़न घटता है, और कलफ़ लगाने व फिनिशिङ्ग के काम में वज़न बढ़ता है। कमी और बढ़ती दोनों की गुंजायश रखते हुए, यदि हम यह मान लें कि मिल में १०० पाउण्ड सूत से औसतन ११२ पाउण्ड कपड़ा बनता* है, तो बाहर से आनेवाले १९००० लाख गज़ कपड़े के लिए लगभग ४००० लाख पाउण्ड सूत चाहिए; और यदि हम यह मानें कि हाथ-कर्घों पर ४ गज़ कपड़ा बनाने के लिए १

आजकल बाहर से आने वाले १९००० लाख गज़ कपड़ा बनाने के लिए भारत को कितने सूत की जरूरत होगी?

---

* १९१८ में औद्योगिक कमीशन ने इसी आधार से हिसाब लगाया

पाउण्ड सूत चाहिए तो, ४७५० लाख पाउण्ड सूत की ज़रूरत होगी। आजकल बाहर से आनेवाले ४५० लाख पौण्ड सूत की स्थान-पूर्ति भी भारतीय सूत से करनी होगी।

४१. भारत में इस समय कितना सूत तैयार होता है, इसके आँकड़े पिछले एक नक्शे में दिये गये हैं (देखिए नक्शा सं० ३) परन्तु यह स्पष्टतः समझ लेना चाहिए कि इन आंकड़ों में हाथ-कते सूत के आंकड़े शामिल नहीं हैं। हाथ-कते सूत के लिए तो कोई भी सरकारी आंकड़ा नहीं मिलता। नक्शा सं० १ में हमने यह माना है कि हाथ-कर्घों को कुल जितना विदेशी और भारतीय मिल का सूत मिलता है उसका १० प्रतिशत सूत तो हाथ-कता होगा ही। परन्तु यह तो स्पष्ट है कि यह अन्दाज़ा १९२०-२१ के बाद के वर्षों के लिए प्रामाणिक नहीं है, और विशेषतः १९२९ के बाद के वर्षों के लिए तो प्रामाणिक हो ही नहीं सकता, क्योंकि १९२९ से तो महात्मा गाँधी ने कताई के उद्योग को पुनरुज्जीवित करने और उसे प्राचीन समय की भांति फिर से सर्वव्यापक उद्योग बनाने की ज़बरदस्त अपील की है और इससे हाथ-कताई के आन्दोलन को बड़ा प्रोत्साहन मिला है। देश में तैयार

था। इस हिसाब से अहमदाबाद और बंबई के मिल-मालिक संघों से परामर्श करने के बाद श्री आर. डी. बेल ने इसी को माना था।

१ पाउण्ड =४.२७ गज	}	कपड़ा = $\frac{३५}{३८}$ पाउण्ड सूत

इस हिसाब से १ पाउण्ड सूत = ४.७८ गज़ (मिल-बना) कपड़ा।

होनेवाले हाथ-कते सूत के परिमाण का अनुमान करना सरल नहीं है। नक्शा सं० १ में १९२८-२९ में उपलब्ध होने वाले हाथ-कते सूत का परिमाण २७० लाख पाउण्ड और १९-२९-३० में उपलब्ध होने वाले सूत का

हाथकता सूत कितना मिल सकता है इसका अन्दाजा नक़्शा सं० १ में

परिमाण ३५० लाख पाउण्ड मान तो लिया गया है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि चर्खों से कतनेवाले सूत का परिमाण इससे बहुत अधिक रहा होगा। दो या तीन वर्ष पहले यह अनुमान लगाया गया था कि भारतवर्ष में लगभग ५० लाख चर्खे होंगे। एस० वी० पुणता-म्बेकर और श्री एन०. एस० वरदाचारी ने १९२६ में प्रकाशित "हाथ-कताई और हाथ-बुनाई"-विषयक अपनी पुस्तक में यह अनुमान लगाया था कि देश में लगभग ५० लाख चर्खे चालू हैं। १९२८ में श्री रिचार्ड बी. ग्रेग ने 'खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र' नामक अपनी पुस्तक में ऐसा ही अन्दाज़ा किया है। एक तकुए से कितना सूत कतता है, इसका बहुत साधारण अनुमान २५ पाउण्ड प्रति वर्ष किया गया है। यह मान लें कि चालू चर्खों की संख्या का अंक बहुत-कुछ ठीक है, तो इस हिसाब से पिछले दो या तीन वर्षों में प्रतिवर्ष औसतन १२५० लाख पाउण्ड सूत तैयार हुआ होगा। यदि यह भी मान लें कि सारे चर्खे नियम से नहीं चलते थे, तो भी कोई भी हिसाब लगाने वाला इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि पिछले एक-दो वर्षों में चर्खों से ६०० लाख पाउण्ड, अर्थात् नक्शा सं० १ में माने हुए परिमाण से प्रायः दुगुना सूत तो तैयार हुआ ही होगा। मैं तो

हाथकते सूत की कुल उत्पत्ति का अन्दाजा

सूत की उत्पत्ति बहुत ही कम मान रहा हूँ (एक तकुए से प्रति-वर्ष १२ पाउण्ड) ताकि परिमाण बिलकुल भी अत्युक्तिपूर्ण न हो। पहले यह माना था कि मिल के सूत से बुना हुआ कपड़ा १ पाउण्ड सूत में से ४ वर्गगज़ बनता है। अब, हाथ-कते सूत से १ पाउण्ड में से ३ वर्गगज़ कपड़ा (मोटी क़िस्म का) बनेगा, ऐसा मान लेते हैं। तो, इस हिसाब से हाथ-कते सूत का कुल कपड़ा लगभग १८०० लाख गज़ या १९२९-३० में विदेश से आये कुल कपड़े का लगभग १० प्रतिशत हुआ। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि यदि एक तकुआ नियम से रोज़ दो घण्टे भी चले तो उससे साल में औसतन २५ पौण्ड सूत आसानी से कत सकता है, और इस अनुमान में अत्युक्ति का भय नहीं है। इस हिसाब को मानने से तो ५००० लाख पाउण्ड सूत कातने के लिए औसतन सालाना २५ पाउण्ड कातने वाले २०० लाख चर्खों की ज़रूरत होगी। इस प्रकार २०० लाख कतैयों को सहायक धंधा मिल जायगा, जिससे उनकी आमदनी कुछ बढ़ेगी। इन २०० लाख कतैयों के अलावा हज़ारों ओटनेवालों, धुननेवालों, साइजिंग करनेवालों, रंगरेज़ों, बढ़इयों, लुहारों, पढ़े-लिखे संगठन-कर्ताओं, और लगभग १५ लाख बुनकरों को इस उद्योग से रोज़गार मिलेगा।

जितने सूत की हमें आवश्यकता है उसको कातने के लिए २ करोड़ चर्खों की ज़रूरत

इसका अर्थ यह हुआ, कि २२ करोड़ कुल कृषिजीवी जनसंख्या से १० वर्ष से कम आयु के ६१० लाख बच्चों को निकालकर शेष कृषक-जनता के एक चतुर्थांश को

इससे $\frac{1}{8}$ कृषिजीवी जनता को सहायता पहुंच सकती है।

मदद मिलेगी इस कार्य में जितनी भी सफलता मिल सके उतना ही अच्छा है। परन्तु जबतक इतने चर्खे इतनी कताई नहीं करने लग जाते, भारत की कताई की मिलें इस मामले में सहायता दे सकेंगी। १९२९-३० में कताई की मिलों ने लगभग ८३३० लाख पाउण्ड सूत काता। उन्होंने १९२९-३० में जितना सूत काता यदि वे उससे ५० प्रतिशत अधिक कातने लगें, तो विदेशी कपड़ा और सूत बिलकुल बाहर निकाला जा सकता है। पर इतनी कताई करने के लिए उन्हें तकुओं की संख्या बढ़ाने के लिए बहुत भारी व्यय करना पड़ेगा। परन्तु यदि कातनेवाली मिलें डबल-शिफ्ट चलें और अधिक-से-अधिक जितना काम कर सकती हैं करें तो अवश्य अपने बुनने के लिए भी वे अधिक सूत तैयार कर सकती हैं, और हाथ-कर्घों के लिए भी अधिक सूत बचा सकती हैं। हाँ, यदि वे भी अपने कर्घों की संख्या बढ़ा दें, और स्वयं अधिक सूत खपाने लगें, जैसा कि उन्होंने कुछ वर्ष पहले किया था तो बात दूसरी है। परन्तु हाथ-बुनैयों के हित की दृष्टि से यह अधिक अच्छी बात होगी कि भविष्य में उन्हें हाथ-कता सूत अधिक परिमाण में दिलाया जाय। इससे वे अधिक सरलता से अपनी दशा सुधार सकेंगे, और सूत के लिए मिलों की पराधीनता से छुटकारा पा सकेंगे, जबतक वे मिल के सूत पर निर्भर रहते हैं तबतक उन्हें ऋणदाता के पंजे में भी अवश्य फंसा रहना पड़ता है, इसलिए वे ऋणदाता

जब तक इतनी सफलता नहीं मिलती तब तक कताई की मिलें की सहायता

हाथ-बुनैयों को अपने हित का ध्यान रखकर हाथ-कते सूत पर निर्भर रहना चाहिए।

के बन्धन से भी छूट जायंगे। १९२६ में चर्खों की संख्या का जो अनुमान किया गया था, उससे तो अब संख्या अधिक होगी, और वे नियम से भी चलाये जाते होंगे। निःसन्देह तब से खद्दर अर्थात् हाथ-कते, हाथ-बुने कपड़े की माँग बढ़ रही है, और इसलिए चर्खों के सूत की उत्पत्ति भी बढ़ रही है। १९३० के साल में विदेशी कपड़े के बहिष्कार का आन्दोलन खूब जोरों से शुरू हुआ। विशेषतः तब से तो शहरों में चलने वाले चर्खों और तकलियों की संख्या भी बढ़ रही है, और आजकल देखने से यही प्रतीत होता है कि शहरों के जो लोग कताई की ओर प्रवृत्त हुए हैं महात्मा गाँधी की ज़बरदस्त अपील के सम्मान के कारण उनकी प्रवृत्ति नहीं घटेगी। इसलिए हाथ-कर्घों के बुनकरों को हाथ-कते सूत को काम में लाने से नहीं हिचकना चाहिए, क्योंकि ज्यों-ज्यों कतैयों को अनुभव होता जायगा त्यों-त्यों सूत की क़िस्म सुधरेगी। नया आन्दोलन तो स्थायी भी मालूम होता है। ज्यों-ज्यों शिक्षित और धनिक वर्ग यह मानने लगेंगे कि यह प्रमुख घरेलू धंधा सबसे अधिक महत्व का है, और जैसे-जैसे कताई गृहस्थ का कर्तव्य और रोज़ का एक काम बन जायगा, वैसे-वैसे खद्दर के प्रति राष्ट्र की रुचि अवश्य बढ़ने लगेगी, इस समय यद्यपि खद्दर का कपड़ा दोषपूर्ण और मोटा है फिर भी लोगों का खद्दर के प्रति प्रेम बढ़ता मालूम होता है। एक ओर तो सर्वसाधारण में यह मान्यता बढ़ रही है कि ग़रीब जनता के लिए कताई एक सहायक धन्धा है और उसका बड़ा महत्व है, दूसरी ओर इस बात को भी लोग मानते जा रहे हैं कि मिल के

हाथ बुनैयों को विश्वास रखना चाहिए कि हाथ-कता सूत खूब मिलेगा।

कपड़े की अपेक्षा हाथ का बुना कपड़ा अधिक टिकाऊ होता है।

लोग सहायक धंधे के रूप में कताई के महत्व को मानने लगे हैं।

जनता की मनोभावना का यह परिवर्तन बहुत ही आशाजनक है। अब तो कपड़े के मामले में भारतवर्ष को स्वावलम्बी बनाने में कोई कठिनाई न होनी चाहिए। हाथ-कताई और हाथ-बुनाई से भारतवर्ष के वस्त्र-स्वालम्बन में बड़ी भारी सहायता हो सकती है। इसलिए देश के सब हित-चिन्तकों को चाहिए कि वे इनको प्रोत्साहन दें।

४२. अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि हम बाहर से मंगाये जाने वाले कपड़े के समान कपड़ा बना सकेंगे या नहीं। यह बात

विदेशी कपड़ों-सा महीन कपड़ा हिन्दुस्तान निकट भविष्य में नहीं बना सकता

निश्चित है और निःसंकोच माननी पड़ेगी कि कई कारणों से भारतवर्ष अभी निकट भविष्य में बाहर से मंगाये जाने वाले कपड़े की क़िस्म का बारीकी का और तड़क-भड़क (फ़िनिश) का कपड़ा न बना सकेगा। जैसा सूत आजकल बाहर से मंगाया जाता है, उससे निकट-भविष्य में बनाया हुआ हमारा सूत भिन्न ही होगा। परन्तु जैसे-जैसे लोगों की रुचि बदलेगी वैसे-वैसे भारत भी बिना

परन्तु जनता धीरे-धीरे अपनी रुचि को रोके और लम्बे रेशे की रुई से महीन सूत तैयार किया जाय, तो हम बहुत हद तक विदेशी कपड़ों को हटा सकते हैं

कठिनाई के बहुत हद तक ऐसा कपड़ा बना सकेगा जो बाहर के कपड़े की स्थान-पूर्ति कर दे। ‡ भारतवर्ष में जितनी भारतीय रुई होती है, उससे तो यह संभव नहीं है कि भारत तत्काल ही बड़े परिमाण में बहुत ऊँचे नम्बरों का रंगीन, सफ़ेद या ख़ाकी (Grey) सूत तैयार करले, क्योंकि

‡ श्री आर्नो एस० पियर्स अपनी पुस्तक "Cotton Industry Of

अधिकांश भारतीय रुई इस योग्य नहीं होती कि उससे ऊँचे नम्बरों का सूत कत सके। ❀ ऐसी अवस्था में ईजिप्त, अफ्रीका, अमेरिका आदि देशों से लम्बे रेशों वाली रुई अवश्य मंगानी पड़ेगी, और बाहर से आनेवाले कपड़े के समान या मिलता-जुलता कपड़ा भारत में बनाने के लिए तो रुई मंगाना अच्छा ही होगा। भविष्य में, हाथ-कर्घे तो मोटा कपड़ा बनाते रहेंगे, और मिलों को बारीक सूत से बारीक कपड़ा बनाना पड़ेगा, और बारीकी अधिक-अधिक बढ़ानी पड़ेगी।

४३. मिलों की मुक्ति इसमें है कि वे लंकाशायर व अन्य देशों से आने वाले कपड़े के मुक़ाबले का बारीक कपड़ा उत्पन्न

India" में लिखते हैं कि अधिकांश मिलों में तैयार होने वाला कपड़ा क़िस्म में हमारे उस कपड़े से तो हलका होता है जो हम योरोप से जहाज़ों में भर कर भारत भेजते हैं। प्रायः सूत पत्तीदार होता है, परन्तु उसका परिमाण इतना काफ़ी होता है कि वह हमारे उत्पन्न किये हुए माल को हटा सकता है, पर यही बात तो विशेष महत्व पूर्ण है।

❀ सन् १९२७ में इंडियन सेण्ट्रल काटन कमेटी ने इंडियन टैरिफ़ बोर्ड को सूचित किया था कि भारत की रुई की कुल फ़सल ६० लाख गांठों के लगभग होगी और इसमें से लंबे रेशे की रुई लगभग २० लाख गांठ होगी। इसमें से भी शायद ३२०००० गांठ या १६ प्रतिशत रुई इस योग्य होगी कि उससे ३०।३६ नंबरों का ताने का सूत कत सके और ५०००० गांठ या ३ प्रतिशत रुई इस योग्य होगी कि उससे ३०। २६ नंबर का बाने का सूत तैयार होसके। (टैरिफ़ बोर्ड की रिपोर्ट का पृष्ट २५९ देखिए।)

करें। साधारणतया लोगों को यह नहीं मालूम कि बारीक सूत कातने से कताई और बुनाई दोनों ज्यादा होते हैं, और उसका कारण यह है कि बारीक सूत में कम शटल चलाना पड़ता है और फलतः मशीन कम बंद होती है।

मिलों की मुक्ति इसी में है कि वे बारीक सूत और कपड़ा ही बनावें

मिलों में बारीक कताई से काम ज्यादा होता है

यह भी एक ख्याल है कि किसी-किसी क़िस्म का सूत बनाने के लिए सस्ती रुई ख़रीदने से सचमुच किफ़ायत होती है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। मान लीजिए, यदि हम किसी रुई में से अधिक ऊंचे नम्बर का सूत निकालने का प्रयत्न न करके उसमें से मिलका साधारण उचित नम्बर का सूत ही निकालते हैं, तो ब्लोरूम में, धुनाई में तथा कताई में रुई कम घटेगी। थोड़ा बल लगाने से ही सूत कत सकेगा, इससे सूत परिमाण में अधिक बनेगा और नरम भी होगा। इसका परिणाम यह होगा कि बुनाई-घर में सूत बहुत बार नहीं टूटेगा और अधिक बुना जायगा। मजदूरी-खर्च में भी बचत होगी, क्योंकि जब रुई से उचित नंबर का सूत ही निकाला जायगा, तब सूत बार-बार नहीं टूटेगा, और मजदूर लोग अधिक तकुओं और कर्घों को चला सकेंगे। कपड़ा जो बनेगा वह भी अच्छी क़िस्म का होगा और उसके दाम भी अधिक मिलेंगे। उस सूत का व्यास भी अधिक होगा। इसलिए हलके क़िस्म की रुई ख़रीदकर उसमें से ज़बरदस्ती खींच-खींचकर ऊंचे नंबर का सूत निकालने की बजाय तो ज्यादा दाम

ऊंचे नंबरों का सूत कातने के लिए हलकी रुई ख़रीदने में किफ़ायत नहीं है

देकर भी अच्छे क़िस्म की रुई ख़रीदना और उसकी शक्ति के अनुसार उचित नम्बर का सूत निकालना ज्यादा अच्छा है। इससे मंहगी रुई की सारी कसर निकल जाती है, और मुनाफ़ा भी अधिक हो सकता है। अहमदाबाद की कुछ मिलों ने साधारणतया इस बात को समझा है। इसलिए वे कताई और बुनाई में बंबई की अपेक्षा ज्यादा काम कर लेती हैं।

मिलें हाथ-कर्घों को बारीक सूत न दे सकेंगी

४४. हाथ-कर्घों को तो मिलें, निश्चय ही, ४० नंबर से ऊपर का सूत बड़े परिमाण में न दे सकेंगी। पहला कारण तो यह है कि वे आजकल ऐसा सूत बड़ी मात्रा में तैयार ही नहीं करतीं, और दूसरा कारण यह है कि विदेश के बारीक कपड़े की जगह बारीक ही कपड़ा बनाने के लिए उन्हें स्वयं बारीक सूत की अधिक आवश्यकता होगी। यह भी मानना पड़ेगा कि भविष्य में चर्खे भी काफ़ी अधिक-अधिक मात्रा में सूत देते रहेंगे, क्योंकि शहरों में और ग्रामों में कातने का प्रचार बढ़ रहा है। इसलिए हाथ-कर्घों को तो हाथ-कते सूत पर ही अधिक से अधिक आश्रित रहना होगा।

विदेशी कपड़े की स्थान-पूर्ति करने का उपाय, हाथ-कर्घा, चर्खा, मिलें और जनता का सहयोग

४५. विदेश से आनेवाले कपड़े की स्थान-पूर्ति करने, और देश के आन्तरिक साधनों से भारत को अपने वस्त्रों की स्वयंपूर्ति करने योग्य बनाने के कई उपाय हैं। शीघ्र समझ में आनेवाले कुछ उपाय ये हैं—

(१) हमारी बुनाई की मिलों को या हमारे हाथ-कर्घों को

चाहिए कि वे विदेश से आनेवाले कपड़े के समान ही कपड़ा बनायें। इसके लिए यदि आवश्यक हो तो अमेरिका या ईजिप्त से रुई* मँगाई जाय और कताई की मिलों में बारीक सूत काता जाय।

महीन कपड़ा बुना जाय

(२) हमारी कताई की मिलों को विदेशों से आनेवाले सूत के समान बारीक सूत बनाने में अपनी शक्ति केंद्रित करनी चाहिए, ताकि जो बुनाई की मिलें और हाथ-करघे हाथ-कते सूत को काम में नहीं ले सकते वे भी बारीक कपड़ा तैयार कर सकें।

बारीक सूत कातना चाहिए

(३) चर्खों की संख्या बढ़नी चाहिए और कातनेवालों को चाहिए कि वे एक-सा और खूब बल लगा हूआ सूत अधिक परिमाण में कातें। कताई की मिलें जितना अधिक काम कर सकती हैं करें, और डबल-शिफ्ट चलायें।

चर्खों की संख्या बढ़नी चाहिए

(४) लोगों को रुचि-सम्बन्धी नखरे-बाज़ियाँ छोड़ देनी चाहिएँ। उन्हें समझना चाहिएँ कि हाथ-कते हाथ-बुने कपड़े पहनने से समाज को कई सामाजिक और आर्थिक लाभ हैं, और हाथ-कता, हाथ-बुना कपड़ा ही पहनने का निश्चय करना चाहिए। जो लोग हाथ-कता हाथ-बुना

लोग हाथ-बुने कपड़े को ही पहनने का निश्चय करें

---

* बंबई और मद्रास की मिलों और हाथ-करघों को समुद्री साधन प्राप्त हैं। इसलिए बारीक सूत के लिए विदेशी रुई के मँगाने से उन्हें उतना ही खर्चा पड़ता है जितना स्वदेशी पर।

कपड़ा नहीं पहन सकते वे भारतीय मिल के सूत का हाथ-बुना कपड़ा या मिल-बुना कपड़ा ही पहनें।

कपड़े की मांग कम करनी चाहिए

(५) लोगों को चाहिए कि वे अपनी कपड़े की मांग कम कर दें, विशेषतः उस किस्म के कपड़े की जो आजकल बाहर से मंगाया जाता है, और उस समय तक कम करें जब तक कि देश के भीतर उतना या वैसा ही कपड़ा न मिलने लगे। इस प्रकार विदेश से कपड़ा मंगाने की आवश्यकता बहुत-कुछ मिट जायगी।

सूती मिलों को कपड़े के दाम यथाशक्य कम करने चाहिए, और बहुत थोड़ा मुनाफ़ा रखना चाहिए

(६) हिन्दुस्थानी कपड़े को सस्ता करने का भी प्रयत्न होना चाहिए। इस बात में सन्देह नहीं है कि लोगों में स्वदेशी की भावना फैलने से अनेक प्रकार से भारत की सूती मिलों के कारखानों को बड़ी सहायता पहुँची है। हिन्दुस्थानी कपड़े की माँग बढ़ गई है। मिल-मालिकों को चाहिए कि वे स्वदेशी कपड़ा पहनने की जनता की भावना से अनुचित लाभ उठाकर मिलों के कपड़े के दाम न बढ़ायँ। पहले जब-कभी उनके कपड़े की माँग अधिक बढ़ी सदा उन्होंने अपने माल के दाम बढ़ा दिये, पर अब फिर उन्हें यह ग़लती न करनी चाहिए, देश के उच्च हित की दृष्टि से उन्हें अपने कपड़े के दाम जितना हो सके कम करने चाहिएँ, और जनता को विश्वास दिलाना चाहिए कि अपने ही कारख़ानों से अपनी आवश्यकता का कपड़ा बना लेने में कितना लाभ है। हाथ से बुने जाने वाले कपड़े के दाम कम करने का भी प्रयत्न

होना चाहिए, और यह प्रायः तभी हो सकता है जब बुनकर स्वयं अपना उचित संगठन करें, और उनका अधिकांश मुनाफ़ा खाजानेवाले आजकल के बीच वाले लोग हट जायं।

यदि हाथ-कर्घे और चर्खे बढ़ जाएँ, तो अपनी वस्त्र-संबन्धी आवश्यकता पूरी करना बहुत कठिन नहीं है

४६. जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, यदि कताई और बुनाई की मिलों में डबल-शिफ्ट चलने लगे, यदि हाथ-कर्घे यथाशक्ति पूरा-पूरा काम करने लगें और उनकी संख्या बढ़ जाय (इसमें तो लागत थोड़ी ही लगेगी), और यदि चर्खों की संख्या बढ़ा दी जाय और वे नियम से चलाये जायं और इस प्रकार हाथ-कता सूत अधिक उत्पन्न होने लगे, तो देश में ही देश की आवश्यकता का कपड़ा मिल सकना बहुत कठिन नहीं है। मिलें अपने कपड़े* और सूत की उत्पत्ति बढ़ा सकेंगी और शायद हाथ-कर्घों के लिए भी अधिक सूत बचा सकेंगी जो काफ़ी ऊँचे नंबर का होगा। यह बचा हुआ मिल-कता सूत उन हाथ-कर्घों के काम में आजायगा जो आजकल विदेश का बारीक सूत लेते हैं और सरलता से हाथ-कता मोटा सूत न ले सकेंगे। चर्खों के सूत की उत्पत्ति भी बढ़ानी चाहिए। क्योंकि हाथ-कर्घों की आवश्यकता चर्खों से ही पूरी होगी। मिलें तो शायद अपना

चौडी रीड के बड़े कर्घों की कमी के कारण ४० इंच से ज़्यादा चौडाई का कपडा मिलें न बना सकेंगी। विदेशी कपड़े के अर्ज के बारे में कोई आंकडे नहीं मिलते। जांच होनी चाहिए।

---

* डबल शिफ्ट चलकर मिलें भारत की आवश्यकता की अधिकांश खाकी (Grey) धोतियां, खाकी कमीज़ का कपड़ा, धुला हुआ लाँग क्लाथ,

कता सूत अपने मशीन-कर्घों पर ही खपा दें और हाथ-कर्घों के लिए कुछ भी न बचा सकें। इसलिए यदि हाथ-कर्घे अधिक सूत के लिए चर्खों का ही भरोसा करें, तो निःशंक रहेंगे।

जैसा कि पीछे बताया जा चुका है, यदि २ करोड़ चर्खे चलने लगें और प्रति वर्ष २५ पाउण्ड सूत निकालने लगे तो हमारी समस्या हल हो जाय। १९२६ में ५० लाख चर्खे चलते हुए पाये गये थे, और हरएक तकुए से किसी के अनुमान से ४८ पाउण्ड सूत और किसी के अनुमान से २५ पाउण्ड सूत कतता था। भविष्य के लिए यदि यह भी मान लें कि साल में २५ पाउण्ड ही कतेगा ॐ और यदि हम २

मल, मादापोलम, और केम्ब्रिक देसकेंगी, और प्रायः सारा रंगीन बुनाई का कपड़ा और रंगा हुआ कपड़ा दे सकेंगी। परन्तु मुझे इसका निश्चय नहीं है कि जिस अर्ज़ का अधिकांश विदेशी कपड़ा आता है, वह अर्ज़ मिलें तैयार कर सकेंगी या नहीं। बाहर से आनेवाला कपड़ा अधिकांश ४०" से अधिक अर्ज़ का होता है, परन्तु बंबई और देश के भीतर की मिलों में शायद चौड़े रीड के बड़े-कर्घों की कमी होगी। बम्बई मिल-मालिक-संघ को इस बात की जांच करनी चाहिए कि हमारे पास चौड़े रीड़ के बड़े कर्घे काफ़ी हैं या नहीं। यह बड़े दुःख की बात है कि किस-किस अर्ज़ का कपड़ा कितना-कितना आता है इसके आंकड़े नहीं रखे जाते। मैं भारत-सरकार को सुझाना चाहता हूँ कि जनता को इस विषय की जानकारी कराने के लिए इस प्रकार के आंकड़े बनाने की आवश्यकता है। हाथ-कर्घे तो विदेशी बड़े अर्ज़ के कपड़े को हटाने के लिए बड़े अर्ज़ का कपड़ा शायद बना सकेंगे।

ॐ यह भी आवश्यक है कि चर्खों की कार्य-शक्ति बढ़ाई जाय। अखिल भारतीय चर्खासंघ ने १ लाख रुपये का ख़ासा इनाम उस व्यक्ति

करोड़ चर्खे चलवा सकें (इसमें खर्च भी थोड़ा ही होगा— फी चर्खा लगभग ३ रुप०) तो २ करोड़ कतैयों को सहायक धंधा मिल जायगा, और इससे लगभग १५ लाख बुनकरों को भी और काम मिलेगा।

हाथ-कर्घों को सूत के लिए मिलों के भरोसे क्यों न रहना चाहिए?

४७. पिछले पैरा में बताया गया है कि आजकल हाथ-कर्घे सूत के लिए मिलों के भरोसे बहुत रहते हैं। पिछले ही एक पैरा में यह बताया गया है कि यदि हाथ-कर्घे के बुनकर मिल का सूत काम में लेना छोड़ दें तो अनेक लाभ होंगे। हम यह फिर दोहरा देते हैं कि मिलें भी "उनका मुक़ाबला करनेवाली और कपड़ा बुनने वाली हैं, और इस बात को खूब जानती हैं।" वे हाथ-कर्घों को अपरिमित हद तक सूत नहीं दे सकतीं। कोई भी व्यवसाय जो अपना माल बनाने के लिए अपने प्रतिद्वन्द्वी व्यवसाय से सामग्री लेता है, तभी तक टिक सकता है जबतक दूसरा उसे टिकने दे। भारत में ज्यों-ज्यों हाथ-बुनाई लोक-प्रिय होती जायगी और ज्यों-ज्यों खद्दर की उत्पत्ति बढ़ती जायगी त्यों-त्यों यह संभव है कि मिलें यह अनुभव करने लगें कि हाथ-कर्घे तो हमारे प्रतिद्वन्द्वी हैं। जिस क्षण मिलों ने यह अनुभव किया, उसी क्षण वे आसानी से या तो हाथ-कर्घों को सूत देना कम कर सकती है, या हाथ-बुनैयों को

को देने की घोषणा की है, जो सबसे अच्छा काम देने वाला चर्खा तैयार करे, और वह ऐसा हो कि साधारण लोग भी उसे ले सकें। मैं संघ को इसके लिए बधाई देता हूँ। इस दिशा में यह कार्य बहुत अच्छा है।

बेकार बनाने के लिए या उनके धंधे को लाभ-हीन करने के लिए सूत के दाम बढ़ा सकती हैं। इसलिए होना तो यह चाहिए कि,

हाथ-कताई की वृद्धि अपरिमित हो सकती है, अतः हाथ-कर्घों को हाथ-कताई पर ही निर्भर रहना चाहिए।

हाथ-कर्घे सूत के लिए मिलों के ही भरोसे या उनकी ही दया पर अवलम्बित न रहें। सूत पाने के लिए उन्हें चर्खों का भरोसा करना चाहिए। चर्खों की कताई तो इसी समय और अपरिमित हद तक बढ़ सकती है। हाथ-बुनाई और हाथ-कताई दोनों एक ही नौका पर सवार हैं,

हाथ-कर्घे के अस्तित्व के लिए उसके पहिले चर्खे का अस्तित्व होना चाहिए

क्योंकि दोनों की ही स्थिति एक दूसरे पर निर्भर है। हाथ-बुनाई के अस्तित्व के लिए उससे पहले हाथ-कताई जीवित होनी ही चाहिए। हाथ-कताई और हाथ-बुनाई एक-दूसरे की पूर्ति करते हैं। उनका उत्थान और उनका

भारत के नये शासन-विधान का गुरुमन्त्र यही होना चाहिए, हर घर में चर्खा और हर-गांव में कुछ कर्घे हों।

पतन साथ-साथ जुड़ा हुआ है। यदि हाथ-कर्घों को चर्खे सहायता न देंगे, तो बुनकर भूखों मर सकते हैं। भारत में जो कोई शासन-विधान क़ायम हो उसका गुरु-मन्त्र यही होना चाहिए कि हर घर में चर्खा हो और हर गांव में कुछ कर्घे हों।

यह तो सच है कि आजकल के हाथ-बुनैये मिल का सूत ज्यादा पसन्द करते हैं। परन्तु इसका प्रधान कारण यह है कि हाथ-कता सूत हम इतना अच्छा तैयार नहीं करते, कि वे लोग आकर्पित हों और इसका व्यवहार करें।

परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि पिछले कुछ वर्षों से सूत की

क़िस्म में बराबर सुधार हो रहा है। छः वर्ष पहले तो ऊंचे नंबर का सूत मिलना कठिन था, परन्तु अब तो न केवल आन्ध्र और मद्रास किन्तु बिहार और बंगाल भी बारीक सूत उत्पन्न करते हैं। इससे मालूम होता है कि थोड़ा अनुभव और अभ्यास और होने पर हमारे कतैये फिर प्राचीन समय की-सी बारीक कताई करने लगेंगे, और जो सूत किसी समय ढाका आदि केन्द्रों में कतता था और संसार जिसकी बराबरी नहीं कर सकता था और जो मशीन के सूत से क़िस्म और उपयोगिता दोनों में बढ़कर माना जाता था, वैसा ही सूत फिर कातने लगेंगे।

हाथ कते सूत का सुधार आवश्यक है

ज्यों-ज्यों कतैयों को अधिक अभ्यास होता जायगा, ज्यों-ज्यों वे नियम से कातने लगेंगे, और जैसे-जैसे वे ओटाई, धुनाई आदि प्रारंभिक क्रियाएं स्वयं करने लगेंगे और अपने लिए रुई भी स्वयं इकट्ठी करके रखने लगेंगे, त्यों-त्यों निश्चय ही उनके सूत की क़िस्म सुधरेगी और बुनैये भी उससे आकर्षित होंगे।

कतैयों का कता हुआ सूत कितना बढ़िया होता है, इस विषय में डा० यूर ने सन् १८३० में, अर्थात् आज से १०० वर्ष पहले यह लिखा है—

"ढाका में अभी तक सूत काता जाता है और मलमल बनाई जाती हैं। यूरोप की आविष्कार—कुशलता इसकी बराबरी की चीज़ नहीं बना सकती। उसे देखकर एक निष्पक्ष विशेषज्ञ ने कहा था, कि यह सूत तो इंगलैण्ड के ऊँचे-से-ऊँचे नम्बर के सूत से भी बहुत अधिक बारीक है,

१८३० में हाथ-कते सूत की उत्तमता। एक रुपया भर रुई में ४ मील लम्बा सूत

है, और यह रूढ़ि-परंपरा के भी अनुकूल है। पहले यह संदेह था कि, भारत में लोग केवल भावुकता के कारण हाथ-बुने कपड़े के लिए मिल के कपड़े से कुछ अधिक दाम देंगे या नहीं, और ऐसी भावुकता का प्रचार सम्भव है या नहीं है और वह व्यावहारिक अर्थशास्त्र के अनुकूल भी है या नहीं। परन्तु आज कल तो हम रोज देखते हैं कि लोग भावुकता के ही कारण खद्दर के लिए कुछ अधिक दाम देने को तैयार हैं। भले ही प्रारम्भिक अवस्था में हाथ-करघे के कपड़े का दाम मिल के कपड़े से कुछ अधिक पड़े, तो भी लोगों को खरीदना चाहिए और हाथ-बुनाई के व्यवसाय को प्रोत्साहन देना चाहिए। उन्हें समझना चाहिए कि इस देश के करोड़ों ग़रीबों की मदद करने का एक मात्र तरीक़ा यही है कि उनकी बेकारी के दिनों के लिए

उद्योग की वर्तमान दशा' विषयक एक लेख में डा० ई० बी० डीट्रिच ने सर अर्नेस्ट टाम्पसन की यह सम्मति उद्धृत की है—"भारत में क़िस्म का ख़्याल नहीं किया जाता है, सस्ती चीज़ ही अच्छी क़िस्म की समझी जाती है।" बहुत हद तक यह बात सही है, और इसका कारण लोगों की ग़रीबी है। कम दाम की हलकी चीज़ें भी उन्हें खरीदनी पड़ती हैं। श्री० बी० ए० तालचेरकर भी इसी बात की शिकायत करते हैं। परन्तु शहरों और कसबों के लोगों में वास्तव में यह भाव बढ़ रहा है कि चाहे दाम थोड़े ज़्यादा भी लगें तो भी हाथ-बुना कपड़ा ही लेना चाहिए। इसका कारण कुछ तो लोगों की भावुकता है, और कुछ यह भी है कि शहरों के लोग कुछ ज़्यादा दाम देने में समर्थ हैं। एक कारण यह भी है कि लोग हाथ-बुने कपड़े को टिकाऊ मानते हैं।

उन्हें कोई रोज़गार दिया जाय, और यह रोज़गार कताई—जैसा सहायक धंधा पैदा करके ही दिया जा सकता है। हाथ-कताई के उद्योग की उन्नति से ग्रामों के अन्य उद्योगों—जैसे कताई, रंगाई, ओटाई, धुनाई आदि को भी प्रोत्साहन मिलेगा। इसके अतिरिक्त, बहुत ही अधिक मोहताज हालत के सिवाय, कभी कृषि-जीवी लोग गांव छोड़कर काम की तलाश में बाहर नहीं जा सकते। उनकी दशा सुधारने का एक-मात्र उपाय यही दीखता है कि उनके गाँवों में ही उनके लायक कोई काम पैदा किया जाय।

हाथ बुनाई और हाथ-कताई दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं

भारतवर्ष में तो यह काम हाथ-कताई और हाथ-बुनाई इन्हीं दो धन्धों के द्वारा हो सकता है। ये दोनों धन्धे एक दूसरे के पूरक हैं, और दोनों का उत्थान और पतन साथ-साथ जुड़ा हुआ है। भारतवर्ष का-सा कोई देश, जिसकी अधिकांश जन-संख्या साल में छः महीने बेकार रहती है, कभी भी समृद्धिशाली होने की आशा नहीं कर सकता। इसलिए यह बहुत ही आवश्यक है कि लोगों को कुछ-न-कुछ काम दिया जाय। जनता के बहुसंख्यक ग़रीब लोगों के लिए कताई व्यावहारिक सहायक धंधे का एक उदाहरण है। यह नहीं कहा जाता, कि लोग इसे ही मुख्य धन्धा बना लें। यह भी नहीं कहा जाता कि यह धन्धा आजकल के किसी उद्योग-धन्धे का मुक़ाबला करेगा या उसको हटा देगा। दूसरे उद्योग-धन्धों से होने वाली आमदनी से कताई की आमदनी को मिलाना

जिस देश की अधिकांश जन-संख्या साल में छः महीने बेकार रहे, वह कभी समृद्धिशाली नहीं हो सकता।

और कहना कि कताई से तो वहुत ही थोड़ी आमदनी होती है, विलकुल व्यर्थ है। कताई की सिफ़ारिश तो इसलिए की जाती है कि यह एक सहायक धंधा है, और जब किसान वेकार होता है, कहीं और कोई कमाई का काम नहीं करता, उन दिनों वह इस काम को कर सकता है ‡

कताई गरीबों के लिए व्यावहारिक सहायक धंधा हो सकता है

‡ "चर्खा-आन्दोलन का क्या तात्पर्य है इसको ठीक-ठीक समझ लेने के लिए पहले यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि उसका तात्पर्य क्या नहीं है। उदाहरणतः, हाथ-कताई आज-कल के किसी उद्योग-धन्धे का मुक़ावला करने और उसे हटा देने के लिए नहीं है, उसका यह उद्देश्य ही नहीं है। हाथ-कताई का उद्देश्य यह भी नहीं है कि एक भी ऐसा आदमी, जो दूसरा अधिक आमदनी वाला धन्धा कर सकता हो, अपना काम छोड़ कर इधर आ जाय। इसलिए यदि दूसरे धंधों की आमदनी से हाथ-कताई की आमदनी का मुक़ावला करें, या लाभ और मुनाफे का हिसाव लगाकर इसका आर्थिक मूल्य निकालें तो यह वड़ी ग़लती होगी। संक्षेपतः हाथ कताई 'धन पैदा करने' के सिद्धान्त को पूरा नहीं करती। हाथ-कताई के पक्ष में जो एक ही दावा किया जाता है वह यह है कि, भारतवर्ष के सामने सवसे विकट समस्या यही है कि यहाँ की जन-संख्या का वहुत अधिक भाग साल में लगभग छः महीने मजवूरन वेकार रहता है। और इसलिए वेकार रहता है कि कृषकों के पास कोई उचित सहायक धन्धा नहीं है। इस कारण ग़रीव लोग भयंकर भूख से पीड़ित रहते हैं। वस इस समस्या को तत्काल और व्यावहारिक तथा स्थायी रूप से हल करने वाली चीज़ हाथ-कताई का धन्धा है। यदि (वेकारी और भूख) ये दो कारण न होते, तो भारत के राष्ट्रीय-जीवन में चर्खे का स्थान न होता। इसलिए यदि चर्खे का ठीक-ठीक आर्थिक मूल्य लगाना है, तो भारतीय

इसमें किसी पूँजी या क़ीमती औज़ारों की ज़रूरत नहीं होती, न इसमें ऊँचे दर्जे की कुशलता या बुद्धिमत्ता की ज़रूरत है। किसान अपनी झोपड़ियों में ही बैठे-बैठे इसे कर सकते हैं। यह काम हाथ-बुनकरों का भी सहारा है और कृषकों का भी। हाथ-कताई के पुनरुद्धार से ग्राम के और भी कई सम्बन्धित धन्धे चेत उठेंगे, और जो ग्राम आजकल गिरती हुई हालत में हैं, उनकी रक्षा हो जायगी।

डा० हेराल्ड मैन की सम्मति। महात्माजी चर्खे के हिमायती हैं, इससे मालूम होता है कि उन्होंने जनता की गरीबी को समझ लिया है

५०. डाक्टर हेराल्ड मैन ने, जो बम्बई अहाते में कृषिविभाग के डायरेक्टर थे, आज से तीन साल पहले जब हिन्दुस्तान से जाने लगे तो एक भेंट में, कहा था कि, दूसरे मामलों में महात्मा गाँधी की योजनाओं और नीतियों के विषय में भले ही कोई कुछ भी कहे, परन्तु जब चर्खे से सिर्फ़ रोज़ एक-दो आने की ही आमदनी बढ़ती है और वे चर्खे की हिमायत करते हैं, तो प्रकट होता है कि उन्होंने भारतवर्ष की दरिद्रता की बात समझ ली है। इस बात को नहीं भूल जाना चाहिए कि चर्खा कातना कोई मुख्य धन्धा नहीं बताया जाता। यह उन लोगों के लिए बताया जाता है जो यदि चर्खा न कातें तो बेकार समय नष्ट करेंगे। जिस आदमी के पास दूसरा अधिक आमदनी वाला धंधा है, उसके लिए चर्खा नहीं है।

जनता की कल्पनातीत दरिद्रता और कुछ-कुछ उसके कारणों का विचार करना पड़ेगा। क्योंकि कारणों का हटा देना ही उसका इलाज है।" महात्मा गाँधी का एक लेख—यंग इंडिया ता० २१ व २९ अक्टूबर १९२६।

भारतवर्ष की औसत राष्ट्रीय आय आजकल बहुत ही कम है। उसमें, थोड़ी-से-थोड़ी, जितनी कुछ भी, वृद्धि हो सके, अच्छी ही बात है। भिन्न-भिन्न ज़िम्मेदार व्यक्तियों ने माना है कि भारतवर्ष दरिद्र है और जनता भयंकर रूप से मोहताज है, और यह बात देश के लोगों को भी नित्य के अनुभव से खूब विदित है*।

भारत की जनता की कठोर दरिद्रता

५१. एक हिन्दुस्तानी की औसत राष्ट्रीय आय ५० रुपया सालाना अनुमान की जा सकती है। † इस देश के करोड़ों ग़रीब लोगों की इस छोटी आय में कितनी भी थोड़ी वृद्धि हो, अच्छी ही बात है। उससे वे दरिद्रता व भूख से बचेंगे और उनकी जीवन-स्थिति कुछ सुधरेगी। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि देश की जिस अशिक्षित जनता को आजकल काम के बिना मजबूरन बेकारी में बहुत समय नष्ट करना पड़ता है, उसकी उत्पादक शक्ति

भारत की राष्ट्रीय आय अल्प है। उसमें अत्यल्प वृद्धि होना भी अच्छा। इस छोटी आय का भी १/६ भाग सूती कपड़े पर खर्च हो जाता है—

* "भारत की आर्थिक अवस्था, १९२५" विषयक डा० पी० पी० पिल्लाई की पुस्तक की भूमिका में मद्रास यूनीवर्सिटी के डा० गिलबर्ट स्लेटर लिखते हैं—"भारत की दरिद्रता एक कठोर सत्य है।"

† भारतवर्ष के प्रति व्यक्ति की समग्र आय का अनुमान भिन्न-भिन्न लोगों ने किया है। १८७१ में दादाभाई नौरोजी ने २०), १९०१ में लार्ड कर्जन ने ३०), १९२१ के लिए, कौंसिल आव् स्टेट के सर बी० एन० शर्मा ने ८६), १९२१ के ही लिए श्री के० टी० शाह ने ४६), १९१९ के लिए सर एम० विश्वेश्वरैया ने ४५), और १९२१-२२ के लिए श्री शाह व खम्भाता ने ७४) का अनुमान किया है। सन् १९०० से १९२२ तक के

बढ़ाने का सबसे अच्छा एक उपाय इस समय चर्खे का प्रचार (जिसमें न तो बहुत कुशलता चाहिए, न पूँजी) और कर्घों की वृद्धि है। कर्घों की वृद्धि करने से चर्खों का तैयार किया हुआ सूत काम में आ जायगा और कपड़ा बन जायगा। हाथ-कताई और हाथ-बुनाई को पुनरुज्जीवित करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि खासकर देहातों में राष्ट्र की जो सुप्त औद्योगिक शक्ति है उसको उपयोग में लिया जाय।

चर्खों के प्रचलन से लोग श्रम करके कुछ कमाने लगेंगे—

इस प्रकार देश के लाखों आदमी अपने श्रम से कुछ कमाने लगेंगे, और इससे निश्चय ही जनता की खरीदने की शक्ति बढ़ेगी। और खरीदने की शक्ति बढ़ाने के लिए ही देश-हित की कामना करने वाला प्रत्येक व्यक्ति प्रयत्न-शील है।

वर्षों का हिन्दुस्तान के एक व्यक्ति की समग्र आय का औसत ४४½ रुपया निकलता है (श्री शाह व खम्भाता लिखित, Wealth and Taxable Capacity of India, देखिए) भारतीय विधान कमीशन ने १९२९ में अपने अनुमान से एक हिन्दुस्तानी की आय प्रति व्यक्ति ११०) मानी है। अब इस आय से, संसार के अन्य देशों की महायुद्ध काल से पूर्व की आय की तुलना कीजिए—

	पौण्ड	रुपया
संयुक्त राज्य (इंग्लैण्ड)	५०	७५०
संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका)	७२	१०८०
जर्मनी	३०	४५०
आस्ट्रेलिया	५४	८१०
केनेडा	४०	६००
जापान	६	९०
भारतवर्ष	२.४	३६

प्रत्येक पूंजीपति, व्यापारी, अर्थशास्त्रज्ञ, राजनीतिज्ञ को, और ग्रेट ब्रिटेन को भी खद्दर आन्दोलन का समर्थन और सहायता करना उचित है

५२. जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, सब लोगों की सम्मति के अनुसार, हाथ-कताई और हाथ-बुनाई ही ऐसे व्यवसाय हैं जिनसे बहुत से ग़रीब कृषकों को उचित काम और आमदनी मिल सकती है। इस देश में ७० प्रतिशत लोगों की गुज़र कृषि से ही होती है, इसलिए कृषकों की समृद्धि होने से ही हमारी ताक़त बढ़ेगी और दशा सुधरेगी। खद्दर आन्दोलन का उद्देश्य है कि भारतवर्ष विदेश से आने वाले कपड़े और सूत के अधीन न रहे। इस आन्दोलन का जोरदार समर्थन प्रत्येक पूँजीपति, मज़दूर-नेता, व्यापारी, राजनीतिज्ञ, और अर्थशास्त्रज्ञ को, और ग्रेट-ब्रिटेन को* भी करना चाहिए। क्योंकि, भारतवर्ष की जन-संख्या संसार की आबादी का लगभग पाँचवाँ हिस्सा है, और इसकी खरीदने की शक्ति बढ़ने से संसार के उद्योग-धंधों को, जो आजकल गिरती हुई अवस्था में हैं, बड़ी उत्तेजना मिलेगी। मैं आशा करता हूँ कि मेरी इस पुस्तक के पढ़ने से देश के लिए दिल में सच्चा दर्द रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति भारत के हाथ-कताई और हाथ-बुनाई इन दो धन्धों का समर्थन करेगा

* "श्री फ़िलिप स्नोडेन, ग्रेट-ब्रिटेन के कोष-मंत्री, ने १९२९ में कहा था कि, यदि भारत की ख़रीदने की शक्ति ६ शिलिंग या लगभग ४) भी बढ़ जाय तो उससे ग्रेट-ब्रिटेन की बेकारी की समस्या हल हो जायगी। क्योंकि, भारत ३० करोड़ वासियों का बड़ा भारी देश है और इसकी राष्ट्रीय औसत आय में थोड़ी-सी भी वृद्धि होने से कुल खरीदने की शक्ति बहुत भारी हो जायगी।

और इनको सहायता देगा। ये दो धन्धे ऐसे हैं जिनसे किसानों को अपने घर पर ही काम मिल जाता है। इनसे भयंकर वेकारी का सवाल कुछ हल होता है। इनसे भारत को वस्त्र-सम्बन्धी आवश्यकता के लिए विदेशों की पराधीनता से छूटने में सहायता मिलती है। और इन सब बातों के साथ ही, ग़रीब जनता की आय में कुछ वृद्धि होती है। इसका भी परिणाम यह होगा कि न केवल इस देश के ही उद्योग-धन्धों को वल्कि संसार के अन्य देशों के उद्योग-धन्धों को भी लाभ पहुँचेगा।

लोगों से खद्दर और स्वदेशी कपड़ा अपनाने की प्रार्थना

५३. मैं यह आशा रखता हूँ कि, जबतक आवश्यक हो, लोग अपनी रुचियों पर ज़रा लगाम रक्खेंगे, और अपनी इच्छा से ही खद्दर को अर्थात् हाथ-कते हाथ-बुने कपड़े को अपनावेंगे। वे समझेंगे कि खद्दर से देश की ग़रीब जनता को अनेक सामाजिक आर्थिक आदि लाभ हैं। जो लोग खद्दर न अपना सकें, वे भारतीय मिलों के सूत का हाथ-बुना कपड़ा व्यवहार में लायंगे, या उन्हीं के सूत का बुना * कपड़ा, जो

मिल-वस्त्र में कलफ़ की अधिकता

कांग्रेस और स्वदेशी मिलें

* मिलों को एक महत्वपूर्ण बात में सुधार करना आवश्यक है। उन्हें कपड़े में कलफ़ लगाने में कमी करनी चाहिए। कलफ़ लगाने का सामान मिलों में कई करोड़ रुपयों का विदेश से आता है, और यह ख़र्चा तो घटाया जा सकता है। कलफ़ करने का ख़र्च अनावश्यक है। इसका रुपया वर्बाद जाता है, क्योंकि धुलते ही कलफ़ तो निकल जाता है। और, कलफ़ के कारण ही बहुत हद तक हलकी क़िस्म का कपड़ा तैयार किया जाता है। मिलों को चाहिए कि भारत के इस रुपये को अनावश्यक रूप

स्वदेशी मिलों † में बनेगा, धारण करेंगे । भारत की

से विदेश न भेजें और यथासम्भव भारी कलफ़ के कपड़े का व्यवहार बन्द कर दें। इसके बजाय उन्हें अपने कपड़े की क़िस्म सुधारनी चाहिए। मैं लोगों से कहूँगा कि वे भारी कलफ़ के बिना धुले हुए कपड़े का व्यवहार न करें। इससे वे बहिष्कार-आन्दोलन को बड़ी सहायता पहुँचायेंगे। मिल-मालिकों से मैं प्रार्थना करूँगा कि वे वैसा ही कपड़ा बनायें और बेचें जिसमें कम-से-कम कलफ़-सामग्री लगी हो, दूसरे कपड़े का बनाना-बेचना बन्द कर दें। लोगों को चाहिए कि जहाँ तक हो सके धुला हुआ कपड़ा खरीदें। उनके ऐसा करने से कुछ दिनों में कपड़ा ज़्यादा अच्छी किस्म का मिलने लगेगा। कपड़ा लेनेवाले तो वे ही हैं, इसलिए मिलों की उत्पत्ति पर नियन्त्रण अन्त में उन्हीं के हाथों में है। जब भारी कलफ़ के कपड़े की मांग घट जायगी, तो मिल-वाले अपने-आप भारी कलफ़ का कपड़ा बनाना बन्द कर देंगे

† भारत की राष्ट्रीय महासभा ने आम जनता से यह अपील की है कि वह स्वदेशी मिलों का तैयार किया हुआ कपड़ा ही काम में लें। स्वदेशी मिलें वे हैं जिनकी पूँजी भारतीय है, जिनका प्रबन्ध और संचालन भारतीय हाथों में हैं, और जो काँग्रेस की दी हुई खास शर्तों के अनुसार चलती हैं। परन्तु भारत में ऐसी कई मिलें हैं जिनकी पूँजी अधिकाँश विदेशी है और प्रबन्ध और संचालन भी विदेशी हाथों में है। भारत की राष्ट्रीय महासभा ने यह सोच कर कि इन मिलों को भी अनावश्यक कष्ट न उठाना पड़े, इनके लिए कुछ शर्तें रखदीं, जिनको पूरा करने पर उनका बहिष्कार भी हट गया। उनमें से कुछ शर्तें ये हैं—डायरेक्टरों में अधिक भारतीय रखे जाँय, विदेशी (रुई या रेशम या नक़ली रेशम का) सूत बिलकुल काम में न लिया जाय, जहाँ-जहाँ सम्भव हो बीमा जहाज़-भाड़ा बैंकिंग, हिसाब-जाँच, क़ानूनी मदद, माल की खरीद और माल की बिक्री-यह सारा व्यापार हिन्दुस्तानी एजेन्सियों के मार्फ़त हो, हिन्दुस्तान में

और ग्रेट-ब्रिटेन की अंगरेज़ी सरकार ने तो हर तरह

विदेशी कपड़ा बेचना बन्द करें, दफ्तर के क्लर्क आदि भारतीय रक्खे जाँय, और जहाँ तक सम्भव हो भारतीय सामान काम में लिया जाय, आदि। अभी तक सब मिलों ने इन सब शर्तों को नहीं माना है।

फरवरी १९२१ तक २०० से अधिक मिलों ने, जिनकी कुल पूंजी ४० करोड़ से अधिक है, काँग्रेस की शर्तों को मान लिया है या समझौता कर लिया है। इन मिलों का माल जल्दी बिक जाता है, और काँग्रेस की बहिष्कार-सूची में रहनेवाली मिलों का माल काँग्रेस की निषेधाज्ञा और पिकेटिंग के कारण सरलता से नहीं बिकता। आशा की जाती है कि जल्दी ही ये बहिष्कार-सूची की मिलें भी काँग्रेस की शर्तों को मानकर काँग्रेस की श्रेणी में आ जायगी। पत्र-व्यवहार चल रहा है।

लगभग ६५ मिलें ऐसी हैं जिन्होंने अपने माल में नक़ली रेशम का व्यवहार बन्द कर देने की बात अभी नहीं मानी है, जो कि काँग्रेस की एक शर्त है। ये मिलें कहती हैं कि भारत में तो नक़ली रेशम का सूत बनता नहीं है, इसलिए वे उसके व्यवहार में कोई आपत्ति नहीं मानतीं। उनका यह भी कहना है कि विदेशी नक़ली रेशमी सूत भारतीय नक़ली रेशमी सूत से प्रतियोगिता नहीं करता। पेरा २५, २६ व २७ में नक़ली रेशमी सूत व उसके कपड़े के विरुद्ध दलीलें दी गई हैं। देश नहीं चाहता कि आज कल के विदेशी रुई के सूत के खतरे के स्थान पर आगे विदेशी नकली रेशम के सूत का खतरा खड़ा हो जाय। यदि नक़ली रेशमी सूती का निषेध न किया गया तो यह खतरा आगे अवश्य खड़ा होगा।

इस विदेशी नकली रेशमी सूत के विरुद्ध एक और भी जंचनेवाली दलील है। विदेश से आने वाला नलकी रेशमी सूत हमारे देश के रेशम के सूत से सस्ता होता है, इससे भारत के Sericulture (रेशम के कीड़ों की खेती) उद्योग को बड़ा धक्का लगता है। इस कारण से भी उसका व्यवहार निषिद्ध हो जाना चाहिए। मुझे आशा है कि वे मिलें विदेशी नकली रेशमी

भारत के वस्त्र-उद्योग को विपत्ति में डाला और उसके साथ असमानता का व्यवहार किया। + भारत की और ग्रेटब्रिटेन की अंग्रेजी सरकार ने ग्रेट-ब्रिटेन में जाने वाले भारतीय वस्त्र पर निषेधात्मक कर लगाये। भारत में आने वाले अंग्रेजी कपड़े पर कर घटाकर व अन्य उपायों से उसे

विलायती नक़ली रेशम की बन्दी होनी चाहिए-वह हिन्दुस्तान के रेशम-व्यवसाय को नष्ट करता है।

सहायता दी। १८९३ में टकसालों में चाँदी लेकर सिक्के ढाल देने की मनाही की। १९१० में चाँदी पर टैक्स लगाया। लगभग ३० वर्ष तक भारत की मिलों में बनने वाले कपड़े पर अन्यायपूर्ण एक्साइज़ ड्यूटी लगा रक्खी। १९२० में विनिमय दर २ शिलिंग का करके फिर १९२७ में १॥ शिलिंग का कर दिया और इस प्रकार देश के सोने को अपने

अब तक सरकार ने भारत के वस्त्र-उद्योग के साथ असमानता का व्यवहार किया

सूत के विरुद्ध दी जाने वाली दलीलों को मानेंगी, और कम-से-कम भारत के Sericulture उद्योग की रक्षा के ही खातिर, उसका व्यवहार भविष्य में छोड़ देंगी। यदि हाथ-कर्घों को भी अपना माल निषिद्ध नहीं करवाना है तो उन्हें भी इस सूत का व्यवहार बिलकुल छोड़ देना पड़ेगा।

यह पुस्तिका लिखी जाने के बाद ग्रन्थकार को यह सूचना पाकर बड़ा हर्ष हुआ है कि जुलाई सन् १९२१ के बाद से भारतीय मिलों ने विलायती नकली रेशम व्यवहार नहीं करने का निश्चय कर लिया है।

+ देखिए, परिशिष्ट सं० २, भारतीय वस्त्र उद्योग के विषय में ग्रेट-ब्रिटेन और भारत की अंग्रेज़ी सरकार की नीति को प्रकट करने वाली घटनाएँ। तथा लेखक की पुस्तक, "Indian Cotton Textile Industry—Its Past, Present and Future," १९३० की छपी।

मनमाने ढंग पर बर्बाद किया। हर तरह विनिमय दर को कायम रखने के लिए रुपया जारी करने में कमी की। विदेशी प्रतियोगिता से भारतीय वस्त्र-उद्योग को संरक्षण न देकर उसे अवनत होने दिया। सरकार ने भारतीय वस्त्र-उद्योग को बहुत थोड़ा-सा संरक्षण दिया, भी तो तब दिया जब बहुत देर हो चुकी थी और उसे बड़ी भारी हानि पहुँच चुकी थी *। यह सहायता भी इतनी कम दी कि वह भयङ्कर अवस्था में गिरे हुए उद्योग के लिए बिलकुल काफ़ी न थी। और विशेष बात यह की गई कि साथ ही भारतीय हितों के बराबर माञ्चेस्टर के हितों को भी सुरक्षित किया गया।

अनुचित और अन्याय-पूर्ण कर-व्यवस्था के द्वारा उन्नति में बाधा दी।

४ अप्रैल १९३० को १९३० का काटन टेक्सटाइल इण्डस्ट्री (प्रोटेक्शन) एक्ट पास किया गया जिसमें सरकार ने इंपीरियल प्रिफरेन्स की नीति प्रविष्ट कर दी। इसके द्वारा अन्य देशों के कपड़े की अपेक्षा ब्रिटेन

१९३० में इम्पीरियल प्रिफ़रेन्स की नीति प्रचलित हुई—

---

* बम्बई-मिल-मालिक-संघ (जिसमें योरोपियन और हिन्दुस्तानी दोनों प्रकार के सदस्य हैं) ने १९२६ में इंडियन टेरिफ बोर्ड के सामने अपनी लिखित गवाही के पैरा १४ में, कितनी खरी बात कही है—

"इस उद्योग के भली-भांति उठने और उन्नति करने के लिए सरकार ने कोई भी मदद कभी नहीं दी। बल्कि, सरकार ने तो इसकी उन्नति को रोकने की नीति साधारणतः अख़्तियार की है। उसने आयात-निर्यात की कर-व्यवस्था ऐसी जारी की कि जो न तो उचित थी न न्यायपूर्ण, और जो इस उद्योग के लिए अत्यन्त हानिकारक थी।"

के कपड़े पर कम ड्यूटी लगेगी †। यह सारी मुसीबतें भारतीय वस्त्र-उद्योग पर आईं, फिर भी इस बड़े राष्ट्रीय उद्योग ने आज तक अपना सिर ऊँचा ही उठाये रक्खा। लोग यदि खद्दर और स्वदेशी को अपनावेंगे तो इस उद्योग की उन्नति होगी। जो लोग देश का कल्याण चाहते हैं, उन सबका यह पवित्र कर्तव्य है कि अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार भारतीय वस्त्र-उद्योग की उन्नति में सहायता दें, ताकि भारतवर्ष अन्य देशों की वस्त्र-विषयक पराधीनता से बिलकुल छूट जाय, और भारत की अधिकांश जनता, जो उचित सहायक धंधा न मिलने से मजबूरन बेकारी में बहुत

स्वेच्छा से खद्दर अपनाने का निश्चय करना और भारतीय वस्त्र-उद्योग को पुनः समृद्धिशाली बनाना सबका कर्तव्य है।

---

† इम्पीरियल प्रिफ़रेन्स की नीति से भारत को कोई लाभ नहीं है। देश में सदा इसका विरोध होता रहा है। १९२१ में इंडियन फ़िस्कल कमीशन ने यह राय दी थी कि यदि भारत कोई बड़ी सहायता देना स्वीकार करेगा तो उसपर भारी बोझ आ पड़ेगा, और ऐसा बोझ उठाना उसके लिए उचित नहीं है। १९३० में, भारत के इतिहास में पहली बार भारतीय वस्त्र-उद्योग के लिए भेदभावपूर्ण संरक्षण का सिद्धान्त लागू किया गया। भारतीय सूती वस्त्र-उद्योग की रक्षा के लिए विदेशी सूती कपड़े पर कर लगाने के सम्बन्ध में एक बिल एसेम्बली में पेश किया गया। बिल में प्रस्तावित संरक्षण बहुत ही अपर्याप्त था और उसके साथ ही इम्पीरियल प्रिफ़रेन्स का प्रस्ताव भी जुड़ा हुआ था। सरकार ने कह दिया कि यदि बिल में से, ब्रिटिश कपड़े पर अन्य देशों से कम ड्यूटी लगाने की धारा, संशोधित की जायगी या हटाई जायगी, तो भारतीय वस्त्र-उद्योग को संरक्षण ही न मिलेगा इसलिए बिल तो गिर न सका। सरकार ने जिस

समय नष्ट करती है, काम पा जाय । इस उद्योग की सहायता करने का सबसे अच्छा और व्यावहारिक तरीका यही है कि लोग स्वेच्छा से खद्दर अर्थात् हाथ-कते हाथ-बुने कपड़े को अपनायें, और इसके लिए रुचि, आराम और पैसे का भी त्याग करना पड़े तो करें । जो लोग ऐसा नहीं कर सकते हैं वे स्वदेशी अर्थात देश के भीतर वने हुए कपड़े को ही अपनायें ।

शकल में चाहा वह उसी शकल में पास हो गया, क्योंकि सरकार ने यह धमकी दी थी कि यदि कोई ऐसा संशोधन रक्खा जायगा जिसे सरकार पसन्द न करेगी, तो उद्योग को संरक्षण ही न मिलेगा । इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि एसेम्बली के सदस्यों के स्वतन्त्र वोटों से बिल पास हुआ ।

परिशिष्ट

संख्या १

भारतवर्ष में सूती कपड़े पर प्रति व्यक्ति कितना खर्च होता है, इसका अनुमान।

प्रत्येक व्यक्ति साल भर में कपड़े पर कुल कितना रुपया खर्च करता है

मेरे ख़याल से अभी तक किसी ने, देश के लोगों द्वारा देश में सूती कपड़े पर कितना रुपया सालाना ख़र्च होता है, यह अनुमान निकालने का प्रयत्न नहीं किया। मेरा तात्पर्य यह है कि प्रति वर्ष भारत में जितना सूती कपड़ा खप जाता है उसकी कीमत * आंकने का प्रयत्न अभी तक नहीं हुआ। मुझे पूरी तरह मालूम है कि ऐसे अनुमान के निकालने में कई कठिनाइयाँ हैं। फिर भी, इससे मोटे तौर पर और वहुत हद तक ठीक-ठीक यह तो मालूम होगा कि लोग वस्त्रों पर वार्षिक व्यय कुल कितना करते हैं। मैंने निम्नलिखित तरीक़े से यह अनुमान निकाला है।

कपड़े पर प्रति व्यक्ति वार्षिक व्यय निकालने का तरीका

सन् १६०६-१० से लगाकर अवतक के विदेश से आने वाले और विदेश को जाने वाले कपड़े के मूल्य-सम्बन्धी आंकड़े

२. विदेश से आनेवाले नक्की कपड़े, अर्थात् पुनःनिर्यात किया हुआ कपड़ा घटा कर, शेष कपड़े का मूल्य कितना था यह ज्ञात है। १९२१ से आँकड़े रुपयों में, और उससे पहले के आँकड़े पौण्डों में प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार, भारत से कितने मूल्य का कपड़ा बाहर गया, इसके आंकड़े भी प्राप्त हैं। मैंने कलकत्ते के डिपार्टमेण्ट ऑव् कमर्शल इन्टेलीजेन्स एण्ड स्टेटिस्टिक्स से यह दर्याफ्त किया कि किस किस साल में रुपये का

---

* प्रत्येक व्यक्ति कितना गज कपड़ा खपाता है, इसका अनुमान तो निकाला गया है। देखिए नकशा सं० १।

विनिमय दर क्या-क्या रहा है, और तदनुसार मैंने १९२०-२१ के पौण्डों के आँकड़ों को रुपयों में परिवर्तित कर लिया। १९०९-१० से से १९१८-१९ तक विनिमय दर १ पौण्ड का १५ रुपया था, और १९१९-२० की साल का दर १ पौण्ड का १० रुपया था। जहाँ तक मुझे मालूम है १९२०-२१ से पहले के वर्षों के आँकड़े किसी सरकारी किताब में या किसी अन्य लेखक की किताब में रुपयों में बनाकर नहीं दिये गये हैं। मैंने इन आंकड़ों को रुपयों में परिवर्तित करके इसलिए दिया है कि इससे पिछले २० वर्षों की तुलना बहुत अच्छी तरह हो जायगी।

३. भारतीय मिलों में कितने मूल्य का कपड़ा तैयार हुआ, इसके आंकड़े १९०८-९ से लेकर १९१६-१७ तक के वर्षों में नहीं बनाये गये। इसलिए कुल कितने मूल्य का कपड़ा मिलों में बना, इसके आँकड़े सीधे नहीं मिलते। परन्तु जो कपड़ा मिलों में बुना गया (और देश में ही रख लिया गया) उस पर सरकार को ३॥ प्रतिशत आन्तरिक कर दिया गया था। इसलिए कुल जितना रुपया आन्तरिक करके रूप में सरकार को दिया गया उसको $\frac{200}{7}$ से गुणा करके, मिलों में बने हुए कपड़े का मूल्य आँका जा सकता है। नक्की आन्तरिक करके आँकड़े बम्बई मिल-मालिक-संघ द्वारा प्रकाशित 'इंडियन कॉटन एक्साइज़ ड्यूटी' नामक छोटी-सी पुस्तक में मिलते हैं। जो माल बाहर जाता था उस पर एक्साइज़ कर वापिस मिल जाता था। इसलिए नक्की कर में बाहर भेजे हुए कपड़े का कर शामिल नहीं है, क्योंकि यह एकबार दिये जा चुकने पर भी कपड़ा बाहर भेजते समय वापिस मिल गया। अतः, जितने मूल्य का कपड़ा बुना गया, उसमें बाहर जाने वाले कपड़े का मूल्य भी जोड़ लेना चाहिए, नहीं तो, उसका मूल्य छूट ही जायगा। इस विषय में एक बात यह मानी गई है कि बाहर भेजा गया कपड़ा सब मिल बना कपड़ा ही था। यह बात सुविधा के ही खातिर मानते हैं, इसलिए नहीं

भारतीय मिलों में कितने मूल्य का कपड़ा बुना गया, इसके आंकड़े नहीं मिलते।

कि यही सही है। बाहर भेजे गये कपड़े में हाथ-बुना कपड़ा कुछ तो शामिल रहा ही होगा, पर जो बात हमने मानी है उससे परिणाम में कोई फ़र्क नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि हमनें हाथ-बुने कपड़े का भी वही मूल्य माना है जो मिल-बुने कपड़े का। इसके कारण निम्नलिखित हैं। चूँकि हमने

नक्की आन्तरिक कर के आंकड़ों पर से अनुमान निकाला गया

सन् १९१६-१७ तक मिलों में बुने जाने वाले कपड़े के मूल्य का अनुमान ठीक आन्तरिक कर के नक़्शों पर से निकाला है, इसलिए इन वर्षों में देश में कुल कितने रुपयों का कपड़ा तैयार हुआ इसका आँकड़ा प्राप्त करने के लिए हम मिल के कपड़े के मूल्य में बाहर भेजे हुए कपड़े का मूल्य भी जोड़ेंगे। परन्तु यह साफ़-साफ़ समझ लेना चाहिए कि इस प्रकार निकाला हुआ कुल मूल्य का अनुमान बहुत ही विश्वास-योग्य न होगा; क्यों कि किसी-किसी प्रकार के कपड़े पर आन्तरिक कर टैरिफ वेल्युएशन के अनुसार लगता था और वह भी साल-साल बदलता रहता था। मिलों में बुने हुए कपड़े का मूल्य जो आन्तरिक कर के नक़्शों के आधार से लिया गया है, सम्भवतः असली मूल्य से कम हो, क्योंकि मिलों ने कम आन्तरिक कर देने की ग़रज़ से कम मूल्य लिखाया हो। परन्तु फ़र्क बहुत नहीं हो सकता। 'स्टेटिस्टिकल एब्सट्रेक्ट फ़ार ब्रिटिश इंडिया' में बताया गया है कि १९१७-१८ से लेकर १९२५-२६ तक के नक्की आन्तरिक करके आधार पर जो मूल्य का अनुमान निकाला गया वह १९१७-१८ से १९२५-२६ तक के वर्षों में मिलों में बुने हुए कपड़े के असली मूल्य से भिन्न था। १९१७-१८ से लेकर १९२५-२६ तक का मिलों का बताया हुआ असली मूल्य ही अधिक प्रामाणिक है, क्योंकि वह मिलों के मूल्य-सम्बन्धी नक़्शों से ही सीधा लिया गया। इसलिए मैंने इन वर्षों के आन्तरिक कर पर से मूल्य का अनुमान न निकाल कर, इन्हीं अंकों को काम में ले लिया है।

४- मैंने इस देश के प्रति व्यक्ति वस्त्र-व्यय का अनुमान निकालने

के लिए १९१७-१८ से १९२१-२२ और १९२१-२२ से १९२५-२६ इन पंचाब्दियों को चुना है। क्योंकि इन दोनों पंचाब्दियों में मिलों में कितने मूल्य का कपड़ा बुना गया, इसके आँकड़े मौलिक और प्रामाणिक मिलते हैं। इससे पहले के वर्षों में से, तुलना के लिए, हमने १९१२-१३ से १९१६-१७ इस पंचाब्दि को ही चुना है, हालांकि, इसमें यह दोष तो रहा ही है कि कपड़े के मूल्य का अनुमान आन्तरिक कर के आधार पर किया गया है। परन्तु बम्बई मिल-मालिक संघ ने जो पुस्तिका (ब्लू बुक) आन्तरिक कर के विषय में निकाली है उसमें भारतीय मिल के कपड़े और विदेश से आये हुए कपड़े की औसत क़ीमत के आँकड़े सन् १९१२-१३ से १९१६-१७ इस पंचाब्दि के सम्बन्ध में ही दिये हुए हैं, और इससे यह भी जाना जा सकेगा कि फ़ी गज़ कपड़े की क़ीमत का जो अनुमान निकाला गया है कहीं वह बहुत ग़लत तो नहीं है। इसके अतिरिक्त यह भी स्मरण रखना चाहिए कि, १९१७-१८ तक भारतीय मिलों में कितने मूल्य का कपड़ा बुना गया, इसका अनुमान प्राप्त करने का एकमात्र और अवलम्बनीय आधार यही है।

पंचाब्दियों का चुनाव—

५. हाथ-बुने कपड़े की क़ीमत के बाबत न तो कोई आधार है, न कोई आँकड़े। इसलिए उसका अनुमान करना कठिन है। विदेशी सूत का और देशी मिलों के सूत का हाथ-बुना कपड़ा कितने परिमाण में तैयार हुआ, इसके आँकड़े तो हाथ-कर्घों के काम के लिए शेष बचे हुए सूत के आँकड़ों से प्राप्त हुए हैं। (देखिए नक़्शा सं० १)। इतने कर्घों में कितने-कितने मूल्य का हाथ-बुना कपड़ा तैयार हुआ, इसका अनुमान निकालने के विषय में मैंने कई प्रमाण-मान्य व्यक्तियों की राय ली, और स्वयं भी कुछ विचार किया। मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि, हाथ-बुने कपड़े का प्रत्येक वर्ष फ़ी गज़ यदि वही औसत मूल्य माना

हाथ-बुने कपड़े के मूल्य का अनुमान करने की कठिनता

जाय, जो मिल-बने कपड़े का था, तो उसके परिणाम पर से ही मूल्य का अनुमान निकल सकता है, और वह सही आँकड़े से बहुत भिन्न न होगा। भारत में भारतीय मिल के कपड़े का फ़ी गज औसत मूल्य क्या था, इसके आँकड़े इस प्रकार प्राप्त हुए हैं। देश में रहने वाले भारतीय-मिल-वस्त्र के (अर्थात् मिलों में बने कुल कपड़े के परिमाण में से बाहर गये कपड़े का परिमाण घटाकर) ठीक परिमाण को देश में रहने वाले भारतीय मिल-वस्त्र के (अर्थात् मिलों में बने कपड़े के कुल मूल्य में से बाहर गये कपड़े का मूल्य घटाकर) मूल्य से भाग दे दिया। यहाँ सुविधा के लिए यह भी मान लिया है कि बाहर भेजा गया कपड़ा कुल मिल-वस्त्र ही था, क्योंकि बाहर भेजे हुए वस्त्र में से कितना हाथ-बुना था और कितना मिल-बुना था, यह जानना कठिन है। यहाँ यह बता देना भी आवश्यक है कि हाथ-बुने कपड़े का फ़ी गज़ औसत मूल्य हर साल मिल-बने कपड़े के समान मानते समय इस बात का ध्यान ज़रूर आया था कि, हाथ-बुने कपड़े में से बहुत-सा कपड़ा बारीक व नफ़ीस होता है, और उसका मूल्य भी मिल के कपड़े से बहुत ऊँचा होता है। परन्तु इसके साथ ही यह भी सोचा गया कि हाथ-कर्घों का अधिकांश कपड़ा मोटे सूत का भी तो होता है और उसकी क़ीमत भी कम होती है। इसलिए मुझे आशा है कि लोग इस बात को मान लेंगे कि हाथ-बुने कपड़े को हर साल के मिल के कपड़े का भाव लगाकर हो मूल्य में परिवर्तित कर लेने में भय नहीं है।

पांच साल का औसत लेना ज़्यादा अच्छा है

६. देश में सूती कपड़ा कितने मूल्य का खपा, इसका अनुमान करने के लिए लगातार पांच वर्षों का औसत लेना ही अच्छा होगा। हरसाल कितना ही भिन्न-भिन्न परिमाण का कपड़ा सिलक बचता है इसलिए सालाना औसत लेना ठीक नहीं है।

९. ऊपर के नक्शे * में जो हिसाब दिया गया है, उससे मोटे तौर पर यह मालूम हो जाता है कि देश सूती कपड़े पर साल में कितना व्यय करता है। १९१२-१३ से १९१६-१७ तक की पंचाब्दि में प्रति व्यक्ति वस्त्र-व्यय रु० २-११-८ निकलता है। इसके मुक़ाबले में १९१७-१८ से १९२१-२२ की पंचाब्दि में रु० ४-१०-८ और १९२१-२२ से १९२५-२६ की पंचाब्दि में रु० ५-२-६ निकलता है। प्रति व्यक्ति कितने गज कपड़ा खपता है, इसके आँकड़ें इस पुस्तक के नक़्शा सं० १ में दिये हुए हैं। इस नक़्शे के अंकों को उस नक़्शे के अंकों से मिलाइए, आपको मालूम होगा कि इन वर्षों में कपड़े की क़ीमत बराबर बढ़ी है।

सूती कपड़े पर प्रति व्यक्ति औसत व्यय

१०. १९०९-१० और १९२४-२५ के वर्षों के बीच प्रति व्यक्ति वस्त्र-व्यय पहले से २५० प्रतिशत से भी अधिक बढ़ा है। परन्तु, जैसा कि अन्यत्र बताया गया है, हमें पंचाब्दियों का औसत ही लेना चाहिए। तब तो, १९१२-१३ से १९१६-१७ की पंचाब्दि और १९२१-२२ से १५२५-२६ तक की पंचाब्दि के बीच प्रतिव्यक्ति वस्त्र पर व्यय पहले से लगभग १६० प्रतिशत अधिक बढ़ गया।

पिछले कुछ वर्षों में वस्त्र-व्यय में बहुत वृद्धि

---

* सूती कपड़े पर देश का, विशेषतः सन् १९१७-१८ से पहले, कितना खर्चा होता था, इसके निकालने का उपर्युक्त तरीक़ा बड़ी गलतियों से भरा हो सकता है। लेखक को यह बात खूब मालूम थी। फिर भी यह अनुमान निकाल कर इस आशा से पेश किया गया है कि शायद इससे किसी ऐसे व्यक्ति को जो इस उद्योग से परिचित हो विचार करने की प्रेरणा मिले और वह देश का प्रति व्यक्ति वस्त्र पर होने वाला व्यय निकालने का कोई अधिक प्रामाणिक तरीक़ा सुझा सके। यदि कोई पाठक इस अनुमान के निकालने का कोई इससे अच्छा तरीका मुझे सूचित करेंगे तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

११. १९२४-२५ के प्रति व्यक्ति व्यय का आँकड़ा देखने से यह भी एक विचार पैदा होता है कि भारतवर्ष में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ५० रुपये वार्षिक की छोटी-सी आय में से वस्त्रों पर औसतन् रु० ५-९-० तक खर्च करना पड़ता है। इसलिए यदि देश में ही कपड़ा बना लिया जाय, और विदेशी कपड़े को लेने में खर्च होने वाला रुपया देश में ही रख लिया जाय, तो भारतीय उद्योग-धन्धों का बड़ा भारी हित हो।

औसत वस्त्र-व्यय वार्षिक आय का लगभग $\frac{1}{9}$

संख्या २

भारत या ग्रेट-ब्रिटेन की अंग्रेजी सरकार ने भारतीय वस्त्र-व्यवसाय की ओर जो नीति रक्खी, उसकी मुख्य-मुख्य घटनाएँ।

१७००—(विलियम तृतीय, अध्याय १०, एक्ट ११ और १२) भारत के छपे हुए केलीको कपड़े का आना बन्द करने के लिए एक कानून बनाया गया।

इस कानून के बनने से हिन्दुस्तान से सादा केलीको कपड़ा ही मंगाया जाने लगा, और छपाई इंगलैण्ड में होने लगी।

इसलिए

१७२१—(जार्ज प्रथम, अध्याय १) एक ऐसा क़ानून बनाया गया, जिसके द्वारा छपे हुए केलीको का व्यवहार में लाना और पहनना अपराध माना गया। पहनने वाले पर प्रत्येक अपराध पर ५ पौण्ड, और बेचने वाले पर २० पौण्ड दण्ड मुकर्रर किया गया।

१७७४—(जार्ज तृतीय, अध्याय ७२) पार्लमेण्ट ने विधान बनाया कि इंगलैण्ड में सूती कपड़ा वही बिक सकेगा जो देश (अर्थात् इंग्लैण्ड)

में ही कता और बुना होगा; पुनः निर्यात करने के ही लिए, भारतीय वस्त्र आ सकेगा, अन्यथा इजाज़त न होगी।

१७९७–१८१३—ग्रेट ब्रिटेन में आने वाले सफ़ेद केलीको और मलमल पर ८५ प्रतिशत तक कर लगाया गया, और रंगे व छपे कपड़े की बिलकुल मुमानियत कर दी गई।

१८२३–भारतीय वस्त्र पर आन्तरिक कर ७॥ प्रतिशत लगाया गया, (यह कर १८२२ तक रहा, और १८२३ में घटाकर २॥ प्रतिशत कर दिया गया) साथ ही, ग्रेट-ब्रिटेन से आने वाले कपड़े पर केवल २॥ प्रतिशत का कर लगाया गया।

सरकार की इच्छा थी कि इससे ग्रेट-ब्रिटेन का कपड़ा भारत में खूब आने लगे और भारतीय उद्योग का ह्रास हो जाय। और इसका ऐसा ही परिणाम हुआ।

१८२५–१८३२—भारतीय कपड़ा जो इंग्लैण्ड जाता था उस पर मूल्य के अनुसार १० प्रतिशत कर लगाया गया।

१८२५–भारत में आने वाले सूती कपड़े पर २॥ प्रतिशत कर लगाया गया।

१८४३–भारतीय कपड़े को भारत में ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक रेल से लाने ले जाने पर भारी व्यय लगा दिया गया, जो १७॥ प्रति शत तक था।

१८४६–ग्रेट-ब्रिटेन में लगने वाला १० प्रतिशत कर हटा दिया गया।

१८५९–भारत में आने वाले सब प्रकार के माल पर मूल्य के अनुसार १० प्रतिशत कर लगाया गया, जिसमें कपड़ा भी शामिल था। सिर्फ़ सूत के आयात पर ५ प्रतिशत कर था।

१८६०–भारत की यूरोपियन चेम्बर्स ऑव् कमर्स की प्रार्थना पर, सूत पर मूल्य के अनुसार ५ प्रतिशत से बढ़ा कर १० प्रतिशत कर लगाया गया।

उन्होंने अपनी प्रार्थना में यह भी लिखा था कि "सूत की आमद पर कम कर होने से भारतीय वस्त्र-उद्योग बढ़ेगा, और ब्रिटिश

उद्योग उतना ही घटेगा।" (यहां भारतीय वस्त्र-उद्योग का मतलब हाथ-कर्घों का उद्योग मालूम पड़ता है।)

१८६१—चूंकि कताई की मिलें उन्नति करने लगीं और १० प्रतिशत कर से उन्हें संरक्षण मिलने लगा, इसलिए सूत की आमद पर कर ५ प्रतिशत कर दिया गया। सूत पर कर घटने से हाथ-कर्घों को तो लाभ हुआ, पर कर घटाने का कारण यही था कि कताई की मिलें कहीं संरक्षण पाकर उन्नति न कर लें।

१८६२—सूत पर आयात-कर घटाकर ३½ प्रतिशत कर दिया गया, और सूती कपड़े पर आयात-कर घटाकर ५ प्रतिशत कर दिया गया।

(बंगाल के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर ने अपनी राय दी कि विदेश से आनेवाले माल पर १० प्रतिशत कर लगाना सरकारी आय का एक उचित साधन है। परन्तु, फ़ाइनेन्स मेम्बर श्री सैम्युएल लेंग उसको घटाने के पक्ष में थे। कारण कि, "इस कर से ब्रिटिश कारखानेदारों और ब्रिटिश व्यापार के हित की हानि होती थी")

१८७१—कपड़े के आयात पर ५ प्रतिशत, और सूत के आयात पर ३½ प्र० श० कर रहा। भारत के बने हुए माल पर पर ३ प्रतिशत निर्यात-कर लगा।

'वस्त्र-कर पर विवाद'

१८७५—मान्चेस्टर के चेम्बर ऑव् कमर्स की प्रार्थना पर टेरिफ़ वेल्युएशन इस प्रकार कम कर दिया गया कि ८८००० पौण्ड का कुल कर कम हो गया।

१८७५—भारत में आनेवाली मिश्र और अमेरिका की रुई पर ५ प्रतिशत कर लगाया गया, ताकि भारत बढ़िया रुई मंगाकर मान्चेस्टर के समान बारीक कपड़ा न बनाने लगे।

१८७८—कच्ची रुई पर आयात-कर हटा दिया गया। बाहर से आनेवाले

मोटे सूती कपड़े पर कर माफ़ कर दिया गया। १० लाख पाउण्ड से ज़्यादा की राजकीय आय का बलिदान किया गया।

'अबाध व्यापार-नीति का ग्रहण'

१८८२—अबाध-व्यापार नीति की विजय हुई। सूत और सूती कपड़े पर आयात-कर हटा दिया गया।

१८९३—टकसालों में चांदी के बदले सिक्के ढाल देना बंद कर दिया गया। इससे चीन और जापान के साथ होनेवाला भारतवर्ष के सूत का व्यापार बंद हो गया।

१८९४—सूती कपड़े पर उसके मूल्य के अनुसार प्रतिशत आयात-कर, और और भारत में मशीन से बनने वाले २० से ऊंचे नंबर के सूत पर मूल्य के अनुसार ५ प्रतिशत आन्तरिक कर लगाया गया।

हानिकारक और अन्यायपूर्ण आन्तरिक कर (चुङ्गी) का लगाया जाना

१८९६—कपड़े पर आयात-कर घटाकर ३½ प्रतिशत कर दिया गया।

(१) बाहर से आये हुए और भारत में बने हुए, दोनों प्रकार के कपड़े पर समान रूप से ५ प्रतिशत के स्थान पर ३½ प्रतिशत कर लगाया गया।

(२) बाहर से आया हुआ और भारत में बुना हुआ, दोनों प्रकार का सूत कर-मुक्त किया गया।

१९१०—भारत सरकार ने १९१० में चांदी पर कर बढ़ा दिया। इससे सुदूर पूर्व के व्यापार को हानि पहुँची। चीन में भारतीय सूत के स्थान पर जापानी सूत काम में आने लगा।

युद्ध-काल—१९१४ और उसके बाद

सब माल पर साधारणतः कर ५ प्रतिशत से बढ़ाकर ७½ प्रतिशत कर दिया गया, परन्तु कपड़े पर कर वही (३½ प्र० श०) रहा।

१९१७-१८—सूती कपड़े पर आयात कर ३½ प्र० श० से बढ़ाकर ७½

प्र० श० कर दिया गया। आन्तरिक कर (एक्साइज़ ड्यूटी) ३½ प्र० श० ही रहा।

१९२०—प्रबल विरोध करने पर भी रुपया और पौण्ड का विनिमय २ शिलिंग फी रुपया मुक़र्रर किया गया। इससे ७८ करोड़ के सोने की जमा नष्ट हो गई। इतनी ऊंची दर क़ायम न रक्खी जा सकी, और १९२४ में सरकार ने अन्त में निराश होकर प्रयत्न त्याग दिया।

१९२१-२२—बजट में घाटा होने के कारण सब माल पर आयात-कर साधारणतः ११ प्र० श० बढ़ा। सूती कपड़े पर भी आयात-कर ७½ से बढ़ाकर ११ प्रतिशत कर दिया गया। आन्तरिक-कर ३½ प्र० श० ही रहा। कताई-बुनाई की मिलों में काम में आनेवाली मशीनरी की आयात पर २½ प्र० श० कर लगाया गया।

१९२२-२३—कर-सूची बढ़ाकर साधारणतः १५ प्र० श० कर दी गई। रुई पर आयात-कर ११ प्र० श० और आन्तरिक कर ३½ प्र० श० ही रहे। मशीनरी पर कर भी २॥ प्र० श० ही रहा।

१९२२-२३—सूत पर आयात-कर ५ प्रतिशत लगाया गया।

१९२५-२६—आन्तरिक कर (एक्साइज़ ड्यूटी) जो १८९६ से बराबर लग रहा था १ दिसम्बर १९२५ से मौकूफ़ कर दिया गया, और १९२६ में बिलकुल उठा दिया गया। लंकाशायर के कहने से यह कर लगाया गया था, और सब ओर से प्रबल विरोध किये जाने पर भी बना रहा था। १९२१-२२ में इण्डियन फ़िस्कल कमीशन ने एक्साइज़-ड्यूटी को "बिना मुलाहिज़े के निन्दित बताया"।

१८९६-९७ से १९२५-२६ तक भारतीय मिलों के माल पर कुल आन्तरिक कर २२,२८, ३९,१५० रु० लगा।

१९२७—व्यवस्थापिका-सभा (एसेम्बली) में बहुमत प्राप्त करके विनिमय दर १ शि० ६ पेंस स्थिर कर दी गई। विनिमय-दर को हर तरह क़ायम रखने के लिए, सरकार को रुपया जारी करने में कमी

करनी पड़ी और बड़ी होशियारी से काम करना पड़ा। १ शि० ६ पेंस दर कायम रखने के लिए अप्रैल १९२६ से १५ नवम्बर १९३० तक ३२ करोड़ के सोने की जमा नष्ट की गई। इस ऊँचे दर पर विनिमय कायम करने से भारत के उद्योग-धंधों को बहुत हानि पहुंची, क्योंकि इसके द्वारा भारतीय कारखानेदारों को हानि पहुँचा कर कारखानेदारों को बड़ा भारी लाभ पहुँचाया गया।

१९२७—१९२७ के मध्य में टेरिफ़ बोर्ड की रिपोर्ट छपी। यह बोर्ड सूती कपड़े के उद्योग को संरक्षण देने के प्रश्न को विचारने के लिए नियुक्त हुआ था। इसकी रिपोर्ट के साथ सरकार का प्रस्ताव भी प्रकाशित हुआ। सरकार ने रिपोर्ट पर कोई कार्रवाई न की। बहुत सी अपीलें की जाने पर सरकार ने मामले पर पुनर्विचार किया, और सितंबर १९२७ में बाहर से आनेवाले सूत पर ५ प्रतिशत या फी पाउण्ड १॥ आना, दोनों में से जो कर ऊँचा हो, लगाया! यह भी सरकार ने बहुत झिझकते हुए किया था, और इससे प्रायः कुछ भी मदद न मिली। हाँ, कताई की मिलों को शायद कुछ मदद मिली।

१९३०—सूत पर कर ३१ मार्च १९३३ तक के लिए जारी रक्खा गया।

१९३०—बम्बई और अहमदाबाद के मिल-मालिक-संघ वर्षों तक निरन्तर प्रार्थना,[1] करते रहे थे कि वस्त्र-व्यवसाय १९२३ से बहुत ही गिरी

---

(१) बंबई-मिल-मालिक-संघ ने इण्डियन टैरिफ़ बोर्ड को ता० १७ जुलाई १९२६ को एक प्रार्थनापत्र दिया था। उसमें से निम्न उद्धरण देखिए—

"दृढ़ आधार पर उन्नति और वृद्धि करने के लिए इस उद्योग को सरकार ने कभी कोई सहायता नहीं दी। प्रत्युत, सरकार ने साधारणतः ऐसी नीति बरती है जिससे इस उद्योग की उन्नति में बाधा हो। सरकार ने आयात-निर्यात कर-व्यवस्था ऐसी बनाई कि जो न न्यायपूर्ण थी न उचित, और जो इस उद्योग को अत्यन्त हानिकारक थी।"

हुई हालत में है, और इस बीच इसकी अत्यधिक हानि हुई है,[२] इसको संरक्षण मिलना चाहिए। तब कहीं जाकर, अप्रैल १९३० में भारत सरकार ने एक क़ानून पास किया। इसके द्वारा कपड़े का आयात-कर ११ प्रतिशत से बढ़कर साधारणतः १५ प्रति-शत कर दिया गया। इसके अलावा जो माल ब्रिटेन का न हो, उस पर ५ प्रतिशत संरक्षणात्मक कर अधिक लगाया गया। और सादा खाकी कपड़े पर भले ही वह किसी देश का हो, कम-से-कम ३॥ आना फ़ी पाउण्ड कर लगाया गया।

इम्पीरियल प्रिफ़रेन्स नीति का प्रचलन[३]

(देश इसका प्रबल विरोध करता है) इससे लंकाशायर को १½ या २ करोड़ रुपये का लाभ होने का अनुमान है[४]।

१९३१—सरकार ने फाइनेन्स ऐक्ट, १९३१, बनाकर बाहर से आनेवाले सूती कपड़े पर ५% का आयात-कर बढ़ा दिया। इस प्रकार, १ मार्च १९३१ से यह ५ प्रतिशत कर बढ़ा। जिस माल पर पहले १५%

---

(२) देखिए, १९३० में छपी हुई लेखक की पुस्तक—'भारतीय सूती वस्त्र-व्यवसाय—उसका भूत-वर्तमान और भविष्य।'

(३) देखिए, १९२१ की इंडियन फ़िस्कल कमीशन की रिपोर्ट, व्यवस्थापिका सभा की बहसें, और लेखक-कृत "मॉडर्न इकॉनॉमिक्स ऑव् इंडियन टेक्सेशन" पृष्ठ १५५-५६. इस पुस्तक पर १९२४ में सर मनुभाई मेहता का पारितोषक दिया गया है। इसका गुजराती अनुवाद बड़ोदा साहित्य-सभा ने १९२५ में प्रकाशित किया।

(४) देखिए, मार्च १९३० में बिल पर व्यवस्थापिका-सभा की बहसें, विशेष कर श्री घनश्यामदास बिड़ला, और पण्डित मदनमोहन मालवीय के भाषण।

कर था उस पर २०% होगया, और जिस पर २०% कर था उस पर २५% होगया।

१९३१—सितम्बर मास में सरकार ने अपनी आय की कमी करने के लिए एक अतिरिक्त बजट चालू किया, और निम्नानुसार कर-वृद्धि की तजवीज़ की। बढ़े हुए ये कर ३० सितम्बर से चालू हुए। (ये कर व्यवस्थापिका सभा की नवम्बर १९३१ की बैठक में स्वीकृत हो जाने पर निर्भर हैं।)

विदेशी सूत और वस्त्र पर लगनेवाले वर्तमान आयात-कर में एक चौथाई दर की वृद्धि हुई। इस प्रकार जिस सूती कपड़े पर २०% कर था, उस पर २५% लगेगा, और जिस पर २५% कर था, उस पर ३१$\frac{१}{४}$% लगेगा। न्यूनतम कर प्रति पाउण्ड ३$\frac{१}{२}$ आना पहले की भाँति फिर भी क़ायम रहेगा।

सूत और धागे पर जो ५% आयात-कर था (जो १९२७ में लगाया गया था), वह अब ६$\frac{१}{४}$% हो जायगा। इसपर न्यूनतम कर पहले की भांति १$\frac{१}{२}$ आना प्रति पाउण्ड क़ायम रहेगा।

मशीनरी और रंगों पर १०% आयात-कर लगेगा। ये वस्तुएं अभी तक कर-मुक्त आती थीं।

अन्य देशों से आनेवाली कच्ची रुई पर भी प्रति पाउंड ६ पाई का कर लगाया गया। यह कर बाहर से आनेवाली रुई की आजकल की क़ीमत पर लगभग १०% पड़ता है। (इस कर का प्रभाव क्या होगा, यह पृष्ठ ५५ पर देखिए।)

साहित्य-सूची

(आकारादि क्रम से। अंग्रेजी पुस्तकों के नाम सुविधानुसार हिन्दी में कर दिये गये हैं।)

अखिल भारतीय चर्खा-संघ—खादी गाइड, १९२९।

अहमदाबाद मिल-मालिक संघ—रिपोर्ट।

इण्डियन इण्डस्ट्रियल कमीशन की रिपोर्ट, १९१८ (सरकारी प्रकाशन)

इण्डियन इयर-बुक—१९२८-२९।

इण्डियन टेक्सटाइल जर्नल—१९२५ से १९३० तक।

इण्डियन टैरिफ़ बोर्ड (सूती वस्त्र-व्यवसाय) एन्क्वायरी की रिपोर्ट, १९२७। (सरकारी प्रकाशन)

इण्डिया—१९२५-२६ से १९२८-२९। (सरकारी प्रकाशन)

उद्योग-विभाग, बंगाल-सरकार, सरकारी वार्षिक रिपोर्ट—१९२९-३० (सरकारी प्रकाशन)

एन्सकफ़, श्री टामस एम०, भारत के सीनियर ट्रेडकमिश्नर—भारत में ब्रिटेन के व्यापार की दशा व भविष्य-विषयक रिपोर्ट, १९२६-२७, १९२७-२८ से १९२९-३० तक। (सरकारी प्रकाशन)

कुमार स्वामी, श्री ए०,—हिन्दुस्थान का कारीगर।

गाडगिल, श्री डी० आर—आधुनिक काल में भारत का औद्योगिक विकास, १९२४।

गान्धी, महात्मा एम० के०—यंगइण्डिया, १९१९-२२ और १९२६-३० से हाथ-कताई और हाथ-बुनाई-विषयक लेख।

ग्रेग, श्री रिचार्ड बी०—खद्दर का सम्पत्तिशास्त्र, १९२८।

चेटरटन, श्री अल्फ्रेड—भारत में औद्योगिक विकास।

वालचेरकर, मुंतज़िम वहादुर, बी. ए., एल. एम. ई., डी. टी. एम. वस्त्र-व्यवसाय विशेषज्ञ होलकर राज्य—चर्खे का सूत, अर्थात् हाथ-कता सूत क्यों सदा श्रेष्ठ होता है; उसके श्रेष्ठ होने के कारण।

दत्त, श्री आर. सी.—भारत का आर्थिक इतिहास।

दास गुप्त, सतीशचन्द्र—चर्खा।

नवजीवन—१९२० से १९३० तक।

निकटपूर्व और अफ्रीका को जानेवाले ट्रेड मिशन की रिपोर्ट १९२८। (सरकारी प्रकाशन)

नियोगी, ज्ञानान्जन—ब्रिटिश राज्य में चर्खे की मृत्यु।

पियर्स, श्री आर्नो एस.—भारत का सूती वस्त्र-व्यवसाय, १९३०।

पिल्लाई, डाक्टर पी० पी०—भारत की आर्थिक अवस्था, १९२५।

पुणताम्बेकर, श्री एस. वी., तथा श्री एन. एस. वरदाचारी—हाथ-कताई और हाथ-वुनाई।

फ़िस्कल कमीशन की रिपोर्ट, १९२२। (सरकारी प्रकाशन)

वम्बई मिल-मालिक संघ—एक्साईज़-कर का इतिहास।

" " —रिपोर्टें, १९२४-३०।

वहसें, भारतीय लेजिस्लेटिव एसेम्वली व कौंसिल ऑव् स्टेट में, १९२४—१९३०। (सरकारी प्रकाशन)

वॉम्वे प्रोविंश्यल वेङ्किंग एन्क्वायरी-कमिटी की रिपोर्ट, १९३०। (सरकारी प्रकाशन)

वङ्गाल प्रॉविंश्यल वेङ्किंग एन्क्वायरी कमिटी की रिपोर्ट, १९३०। (सरकारी प्रकाशन)

वेल, श्री आर. डी., सी. आई. ई., आई. सी. एस.—भारतीय वस्त्र-व्यवसाय तथा विशेषतः हाथ-वुनाई पर कुछ नोट, १९२६। (सरकारी प्रकाशन)

भारत की जनसंख्या की रिपोर्ट, १९२१। (सरकारी प्रकाशन)

भारतीय मिलों में सूती कताई और बुनाई-सम्बंधी मासिक आंकड़े, १६२६ और १६३० के अंक। (सरकारी प्रकाशन)

मॉरेल ऐण्ड मेटीरियल प्रॉग्रेस रिपोर्टस्, १८८२-९१ और १६१८-१६ से १६२२-२३ तक। (सरकारी प्रकाशन)

यङ्ग इण्डिया, १६२१ से १६३० तक।

राय, आचार्य पी. सी—खद्दर का संदेश, कोकनद की १६२६ की खादी-प्रदर्शिनी के उद्घाटन के समय का भाषण।

रायल एग्रीकल्चर कमीशन की रिपोर्ट, १६२८। (सरकारी प्रकाशन)

रिव्यू ऑव् दि ट्रेड ऑव् इण्डिया—१६२७-२८ से १६२६-३० तक। (सरकारी प्रकाशन)

वकील, प्रो० सी. एन.—हमारी सरकारी आर्थिक नीति।

वरदाचारी, श्री एन० एस०, तथा श्री एस० वी० पुणताम्बेकर—हाथ-कताई और हाथ-बुनाई।

विल्सन, श्री एच. एच.—भारत का इतिहास।

शाह, डाक्टर एन. जे., बी. ए., पी. एच डी.,—भारत के आयात-निर्यात की कर-व्यवस्था का इतिहास, १६२१।

शाह, प्रोफ़ेसर के, टी—भारत का साठ वर्ष का राजस्व।

शाह व खम्भाता,—भारत की सम्पत्ति और कर-योग्यता, १९२५।

समुद्रमार्ग से होने वाले व्यापार और ब्रिटिश भारत के जल-मार्ग सम्बन्धी-विवरण—सन् १९३० तक के वार्षिक व मासिक अङ्क। (सरकारी प्रकाशन)

स्टेटिस्टिकल एब्सट्रैक्ट ऑव् ब्रिटिश इण्डिया—१९१८-१६ से १६२७-२८ (सरकारी प्रकाशन)

हार्डी, श्री जी, एस., आई. सी. एस., १६२६ के कलकत्ता के कस्टम कलेक्टर—सूती कपड़े की आयात कर-व्यवस्था, तथा सूती कपड़े के व्यापार में बाहर की प्रतियोगिता-सम्बन्धी रिपोर्ट। (सरकारी प्रकाशन)

निर्देशिका

[संख्या पैरा की दी गई है]

PUBLICATIONS BY THE SAME AUTHOR.

(1) "The Indian Cotton Textile Industry: Its past, present and future" 1930, with a foreword by Mr. G.D. Birla, M.L.A. 142 pages. Price Rs. 3/- or Sh. 6/-.

(2) "How to Compete with Foreign Cloth - A Study of the Position of Hand-spinning, Hand-weaving, and Cotton Mills in the Economics of Cloth-production in India", 1931, with a foreword by Sir P. C. Ray. 135 pages. Price Rs. 3/3 or Sh. 8/- (Gujerati, Bengali and Tamel Editions with a foreword by Mahatma Gandhi are under print.)

To be had of:-

Mr. M. P. Gandhi,
C/o Indian Chamber of Commerce,
135, Canning Street,
Calcutta.

or

Messrs. The Book Company Ltd.,
4/3B. College Square,
Calcutta.

A few extracts from Reviews of "How to Compete with Foreign Cloth".

"*INDIAN FINANCE*": Mr. M. P. Gandhi of the Indian Chamber of Commerce, Calcutta, has just brought out a book, which should please the heart of his illustrious namesake and which has already

received his full benediction. ÷ ÷ ÷ Mr. Gandhi is convincing and exhaustive when he details the advantages possessed by the handlooms over the powerlooms. × × He has conceived his thesis with sufficient clarity and presented it in a very readable and argumentative form. × × Mr. Gandhi is very forceful in his suggestion that the problem of employment in India is mainly the problem of finding a subsidiary occupation for the vast numbers who till the land. × × The book is more than complete technically speaking, with a complete index an alluring Bibliography and appendices that are worth study as much on their own as for the aid they give in understanding the main contentions of the book.

"*CAPITAL*". × × The author, who is a name-sake as well as a fervent admirer of the non-co-operation leader, lays a great deal of stress on the immediate importance, as well as the future potentialities,of the hand loom industry.

"*THE MAHARATTA*". × × In a very lucid and convincing manner, the author has discussed all the possible methods to stop the imports of foreign cloth and to make India self-sufficient. × × The author has suggested that the mills should be allowed to import long-stapled foreign cotton from abroad for turning out finer counts of yarn. + + To revive the handloom

industry, Mr. M. P. Gandhi has made very practical suggestions and they are no doubt within easy reach of the Goverment anthoritis if they are really sincere to make India self-supporting. × × The book is invaluable to every student of Economics, Pracharak of Swadeshi and all those who have the interests of India at heart.

"*ADVANCE*". × × The author of the monograph has given in Appendix II of his book certain l ndmarks of this policy from the year 1700, which is worth more than a ton of precepts which we hear from the chowringhee and Clive Street well-wishers of India.

"*THE HINDU*". + + The case for the Charkha and for khadi is succinctly summarised by Mr. M. P. Gandhi who cannot by any means be styled an agitator and whose acquaintances with national business needs is too deep and sound to be questioned. Conclusions not due to any political bias but based on actua facts are enumerated by the author and a study of the book will suffice to dispel all doubts as to the efficiency of Maha'ma Gandhi's programme.

"*THE INDIAN TEXTILE JOURNAL*". + + Mr. M. P. Gandhi is now a rising young writer with several interesting publications to his credit. + × The problem of clothing India's millions is discussed by Mr. Gandhi in it various aspects in an intelligent manner.

"*COTTON & FINANCE*" × × The subject has been treated in such an exhaustive manner by Mr. M. P. Gandhi that every reader whatever may be his views. will find ample material in that book.

"*SWADESHI & BAHISKAR*"—*weekly of the Gujerat Provincial Congress Committee* : There was a great necessity of a book like this when the whole country is prepared to spend all its energies for the complete exclusion of foreign cloth. The author has proved with facts and figures that the exclusion of foreign cltoh is possible through Khaddar alone The author who has a vast experience, who is connected with organisations of trade and industry, and who is a learned economist, has shown in a way which will carry conviction to every one that handlooms cannot exist without handspinning. The pages of the book are litterd with interesting statistics which have been carefully compiled and which have been made use of for prov'ng the various conclusions drawn by the author.

"*INDIAN INSURANCE AND FINANCE REVIEW*" ; × × It is probably the first treatise of its nature which contains numerous details regarding the Indian Textile Industry and which claimed much patient and painsataking work from its author.